* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *
करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि ॥
कल्याण
वर्ष ६३
संख्या २

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,७५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, वि॰ सं॰ २०४६, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१५, अप्रैल १९८९ ई॰

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें २.०० रु॰ विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.००रु॰ विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

पराम्बा भगवती जगद्धात्री

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
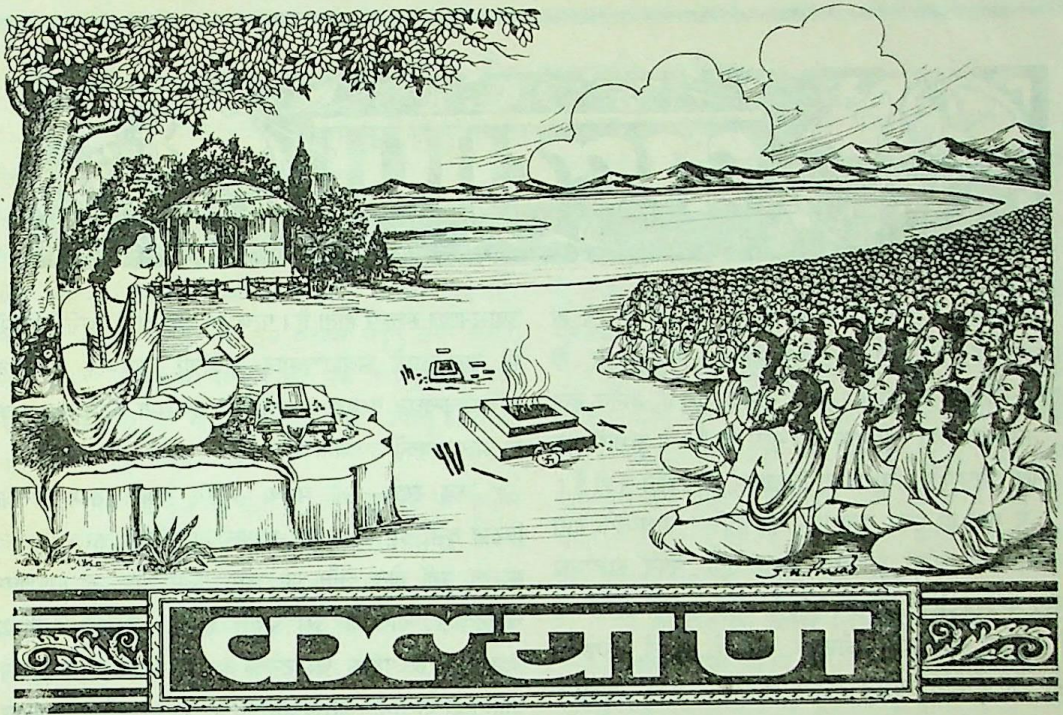
यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर वैशाख, वि॰सं॰ २०४६, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१५, मई १९८९ ई॰ { संख्या २ पूर्ण संख्या ७४७

जगद्धात्री भगवती जगदम्बा

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

जो अपने कर-कमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरदृतुके शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकोंकी आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं तथा गौरीके शरीरसे जिनका प्राकट्य हुआ है, मैं उन महासरस्वती देवी (जगद्धात्री जगदम्बा) का निरन्तर ध्यान करता हूँ।

भगवान्, सत्यतत्त्व एक ही हैं। वे ही ब्रह्म हैं, वे ही परमात्मा हैं। वे ही निराकार-निर्विशेष-निर्गुण, वे ही साकार-सविशेष-सगुण हैं। उनके अनेक नाम हैं, अनेक रूप हैं, 'नाम-रूपरहित' भी एक नाम-रूप ही हैं। वे सभीमें एक हैं, नित्य परिपूर्ण हैं। विश्वाकार, विश्वाधार, विश्वातीत वे ही हैं।

वे एक ही परम तत्त्व परमात्मा विभिन्न साधकोंके द्वारा विभिन्न नाम-रूपोंसे उपासित होकर उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन करानेके लिये विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहे हैं। वे ही भगवान् श्रीनारायण, श्रीशङ्कर, श्रीदुर्गा, श्रीसूर्य, श्रीगणेश और इन पाँचोंके विभिन्न अनन्त स्वरूप हैं, इनके अतिरिक्त अन्यान्य धर्मावलम्बियोंके जो विभिन्न इष्ट हैं, वे भी वे ही हैं। यहाँतक कि नास्तिकोंका 'नहीं है' भी वे ही हैं।

याद रखो—साध्य-तत्त्वमें किसी प्रकारका कभी भेद न होनेपर भी साधनके भेदसे उनमें भेद है। साध्यका स्वरूप तथा साधन-प्रणालियाँ रुचि, भाव, अधिकारके अनुसार विभिन्न प्रकारकी हुआ करती हैं और होनी चाहिये। सारी साधन-प्रणालियोंको एक करनेकी चेष्टा तो व्यर्थ प्रयास या पागलपन है। कोई कहे कि दक्षिणके कन्याकुमारी, उत्तरके बदरिकाश्रम, पूर्वके असम-प्रान्तीय शिवसागर और पश्चिमके सौराष्ट्र—सभी जगहके लोगोंको काशी आनेके लिये आरम्भसे एक ही मार्ग ग्रहण करना चाहिये, तो वह जैसे पागल है, वैसे ही सब साधन-प्रणालियोंको—साधन-मार्गोंको एक करनेकी बात कहनेवाला भी समझदार नहीं है।

सौम्य प्रकृतिवाला पुरुष कभी कराली, काली, छिन्नमस्ता, भगवान् नृसिंह, प्रलयंकर शङ्कर आदिकी उपासना नहीं कर सकता और क्रूर प्रकृतिवाला व्यक्ति मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर, हंसवाहना सरस्वती, शान्त सदाशिवकी उपासना नहीं कर सकता। उपासकोंके प्रकृति और रुचिभेदके अनुसार ही उपासनाका स्वरूप होता है। परमात्मा एक ही हैं, इसीसे किसी भी नाम-रूपसे सर्वशक्तिमान्, सर्वोपरि, सर्वरूप, सर्वातीत सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माकी उपासना करनेवाला एक ही सत्यतत्त्वकी उपासना करता है।

याद रखो—जो मनुष्य अपनी प्रकृति तथा रुचिके विरुद्ध दूसरे इष्ट या साधन-प्रणालीको स्वीकार करता है, वह सफल नहीं होता और जो लोग किसी एक साधनपथपर चलनेवाले व्यक्तिको उस पथसे हटाकर उसकी पद्धतिके विपरीत दूसरे पथपर घसीटनेका प्रयास करते हैं, वे उसका अहित ही करते हैं। इससे वह पथभ्रष्ट हो जाता है, नये पथपर चल नहीं सकता और अकर्मण्य होकर जीवन नष्ट कर देता है। अतएव अपने-अपने पथपर चलते रहो और दूसरे-दूसरे पथोंपर चलनेवालोंके लिये भी यही समझो कि ये सभी पृथक्-पृथक् मार्गोंसे हमारे ही प्रभुके धामकी ओर जा रहे हैं। न किसीसे घृणा-द्वेष करो, न किसीको नीचा समझो, न किसीको उसके सन्मार्गसे हटानेका यत्न करो और न स्वयं ही किसी दूसरे मार्गकी ओर लुभाकर अपने मार्गको छोड़ो।

इसीलिये शास्त्रों और पुराणोंमें विभिन्न प्रकृति, रुचि और स्वभाववाले मनुष्योंके कल्याणके लिये परमात्माके विभिन्न स्वरूपों, विभिन्न लीलाओं और विभिन्न धामोंकी अतुलित महत्ताका वर्णन मिलता है, जिसके अनुसार व्यक्ति अपने मनोऽनुकूल साधनका चयन कर सकता है।

विभिन्नतामें ही प्रभुके संसारकी शोभा है। विभिन्नता कभी मिट नहीं सकती। अपने-अपने साधनपथपर चलकर इस विभिन्नतामें नित्य-एकताको देखने और सारी विभिन्नताओंके आत्मा—मूल एक परमात्माको प्राप्त करनेमें ही मानव-जीवनकी चरम और परम सफलता है। **'शिव'**

आँवलेसे वैकुण्ठकी प्राप्ति

प्राचीन कालमें एक पुल्कस था। वह दिन-रात पाप ही कमाया करता था। एक दिन आखेट करते-करते उसे जोरोंसे भूख और प्यास लगी। इधर-उधर देखनेपर उसे आँवलेका एक वृक्ष दीख पड़ा, जो पके आँवलोंसे लदा हुआ था। उन मोटे, पके और रससे भरे आँवलोंके खानेसे उसकी भूख और प्यास दोनों मिट गयीं। वह उस वृक्षपर बहुत ऊपर चढ़ता चला गया था। संयोगसे फलोंसे लदी एक डाल टूट गयी और फलोंके साथ ही वह भी पृथ्वीपर आ गिरा। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

उस जंगलमें कुछ प्रेत रहते थे। वे पुल्कसके पापकर्मोंसे भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने मृत्यूपरान्त उसपर अपना अधिकार जमाना चाहा; क्योंकि पापीलोग मरनेके पश्चात् प्रेतके वशमें हो जाते हैं। उधर यमदूत अपना अधिकार जमाने आये, किंतु उनमेंसे एक भी पुल्कसका स्पर्श नहीं कर पाता था। स्पर्श करना तो दूर रहा, उसकी ओर कोई ताक भी नहीं पाता था; क्योंकि उसके तेजसे सबकी आँखें ही चौंधिया जाती थीं।

प्रेत और यमदूत असमंजसमें पड़ गये। उन्होंने मुनियोंसे पूछा—'महानुभावो! यह पुल्कस तो पापियोंका सरदार था। फिर इसमें इतना पुण्य कहाँसे आ गया कि हमलोग उसे देख भी नहीं सकते।'

दयालु मुनियोंने बतलाया—'गङ्गा और तुलसीकी तरह आँवलेमें भी पावनकारिता है। इन्हीं आँवलोंके खानेसे और इनके सम्पर्कसे पुल्कसके सारे पाप नष्ट हो गये और उसमें पुण्य भर गये हैं। यह अब तुमलोगोंके अधिकारक्षेत्रसे बाहर हो गया है। भूलकर भी उसके पास मत जाना, नहीं तो विष्णुदूतोंकी मार पड़ेगी। वे इसे विमानपर बैठाकर वैकुण्ठ ले जायँगे।'

प्रेतोंने कहा—'इतना बड़ा पापी भी जब मुक्त हो सकता है, तब हमारी भी मुक्ति सम्भव है। दया कर आप हमारी मुक्तिका उपाय बतलायें।'

मुनियोंने उन्हें आँवला खानेको कहा, परंतु प्रेतोंको आँवला-जैसी पवित्र वस्तु तो दीखती ही नहीं, फिर ये खायें कैसे! यह समस्या खड़ी हुई। तब दयालु मुनियोंने अपने सामर्थ्यसे उन्हें आँवले दिखलाये और खिलाये। इसी बीच चमकता हुआ एक विमान उतरा। उसपर बैठकर वह पुल्कस और प्रेतोंका समुदाय वैकुण्ठ पहुँच गया।

आँवलेके लिये निषिद्ध समय

आँवला इतना पवित्र तो है,पर उसके सेवनमें कुछ निषिद्ध दिन एवं तिथियाँ भी हैं। निषिद्ध समयपर आँवलेका सेवन करना विहित नहीं है। रविवार एवं शुक्रवारको और प्रतिपदा, षष्ठी, सप्तमी तथा कार्तिक शुक्ल नवमीके अतिरिक्त अन्य मासोंकी नवमी, अमावास्या एवं संक्रान्तिको आँवला नहीं खाना चाहिये।

थोड़ेमें बहुत बड़ा लाभ

तीर्थोंकी यात्रा तथा विविध व्रतोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह आँवलेके सेवनसे प्राप्त हो जाता है। इसके सेवनसे सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं और दुष्ट-से-दुष्ट दैत्य और राक्षस अपनी दुष्टता छोड़ देते हैं। अरिष्ट और ग्रहोंकी यातना नहीं होती। (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० ६२)

भगवत्कथा-श्रवणसे लाभ

कथां वै शृण्वतः पुंसो जन्मबन्धो न विद्यते ॥
सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति। रतिश्च जायते विष्णोः सौहृदं चैव साधुषु ॥
नीरजं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते। श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञात्वा ध्यानाय कल्पते ॥

(स्कन्द०,वैष्णव०,वैशाख० १४। १३-१५, १९)

'कथा सुननेवाले पुरुषको जन्म-मृत्युमय संसार-बन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। उसके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, भगवान् विष्णुमें जो अनुरागकी कमी है, वह दूर हो जाती है और उनके प्रति गाढ़ अनुराग होता है। साथ ही साधु पुरुषोंके प्रति सौहार्द बढ़ता है। रजोगुणरहित गुणातीत परमात्मा शीघ्र ही हृदयमें स्थित हो जाते हैं। श्रवणसे ज्ञान पाकर मनुष्य भगवच्चिन्तनमें समर्थ होता है।'

छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

[गताङ्क पृ० ३७२ से आगे]

वैशाखमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'वरूथिनी' एकादशी—'वरूथिनी' एकादशीके व्रतसे सुख-सौभाग्यकी प्राप्ति और पापकी हानि होती है। मान्धाता, धुन्धुमार आदि राजा 'वरूथिनी'-व्रतके प्रभावसे स्वर्ग चले गये और भगवान् शंकरको ब्राह्म-कपालसे मुक्ति मिली।

दस हजार वर्ष तप करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह 'वरूथिनी'-व्रतके अनुष्ठानसे मिल जाता है। दशमीमें काँस, उड़द, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, पराया अन्न, दो बार भोजन और मैथुन—इन दस वस्तुओंका त्याग करे। एकादशीके दिन जूआ खेलना, सोना, दतौन करना, पान खाना, निन्दा करना, चुगुली करना, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध और असत्य-भाषण—इन ग्यारह वस्तुओंका त्याग करे। द्वादशीके दिन काँस, उड़द, मसूर, शराब, मधु, तैल, पतितोंके साथ बातचीत, व्यायाम, परदेश-गमन, दो बार भोजन, मैथुन और बैलकी सवारी—इन बारह वस्तुओंका त्याग करे।

(ख) शुक्लपक्षकी 'मोहिनी' एकादशी—भद्रावतीमें धृतिमान् नामक राजा राज्य करते थे। उस नगरीमें धनपाल नामका एक वैश्य रहता था। वह धनका उपयोग पौंसला, कुँआ, मठ आदिके बनवानेमें किया करता था। वह भगवान् विष्णुका अनन्य भक्त था। उसके पाँच लड़के थे। पाँचवाँ पुत्र धृष्टबुद्धि दौर्भाग्यसे बहुत दुष्ट था। वह पूजा-पाठसे बहुत चिढ़ता था। एक दिन पिताने उसे वेश्याके साथ देखा। पिताने तथा सारे पुरजनोंने उसे घरसे निकाल दिया। तत्पश्चात् उसे सब प्रकारके अभावोंका सामना करना पड़ा। अब उसकी बुद्धि पुण्यकी ओर मुड़ने लगी। संयोगवश उसे कौण्डिन्य मुनिका दर्शन हुआ। मुनिने इसे वैशाखमासके शुक्लपक्षमें 'मोहिनी' नामक व्रतका अनुष्ठान बतलाया। धृष्टबुद्धिने बड़ी भक्तिसे 'मोहिनी' एकादशीका व्रत किया। इस व्रतके प्रभावसे उसके सारे पाप-ताप दूर हो गये। अन्तमें उसे गरुडकी सवारी मिली, जिससे वह विष्णुधाम चला गया।

ज्येष्ठमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'अपरा' एकादशी—महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'भगवन्! ज्येष्ठमासके कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है? तथा इसकी क्या महिमा है?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'इस एकादशीका नाम 'अपरा' है। इसके अनुष्ठानसे बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है, बहुत पुण्य प्राप्त होता है तथा ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या आदि पापोंकी निवृत्ति हो जाती है। प्रयागमें मकर-संक्रान्तिके अवसरपर स्नान करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, काशीमें शिवरात्रि-व्रतके अनुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, गयामें पिण्डदान कर पितरोंको तृप्त करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, गोदावरीमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है और बद्री-केदारकी यात्रा एवं दर्शनसे जो फल प्राप्त होता है वह सब 'अपरा' एकादशीके व्रतसे प्राप्त हो जाता है।'

(ख) शुक्लपक्षकी 'निर्जला' एकादशी—इसके विषयमें महाराज युधिष्ठिरके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'इस प्रश्नका विस्तृत विवरण परम धर्मात्मा व्यासजी करेंगे।'

उस सभामें व्यासजी भी बैठे थे। भगवान् श्रीकृष्णका निर्देश पाकर वेदव्यासजी बोले—'दोनों ही पक्षोंकी एकादशियोंके दिन भोजन न करे। जननाशौच और मरणाशौचमें भी एकादशीके दिन भोजन वर्जित है।' भीमसेन वहीं बैठे थे। उन्होंने कहा—'पितामह! मेरी माँ, द्रौपदी और सब भाई एकादशीके दिन कभी भोजन नहीं करते, किंतु मेरे पेटमें 'वृक' नामकी अग्नि है, अतः मैं बिना खाये नहीं रह सकता। मुझे कोई एक ही एकादशी बताइये, जिसके अनुष्ठानसे मैं कल्याणका भागी बनूँ।' व्यासजीने भीमसेनको इसी निर्जला एकादशीका अनुष्ठान बतलाया। इसीलिये इस एकादशीका नाम 'भीमसेनी एकादशी' पड़ गया।

आषाढ़मासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'योगिनी' एकादशी—राजाधिराज कुबेरके सेवकोंमें हेममाली नामक एक यक्ष था। उसका काम था पूजाके लिये फूल लाना। राजराज कुबेर उन पुष्पोंसे भगवान् शंकरकी नियमित पूजा किया करते थे।

हेममालीका अपनी पत्नीपर अत्यधिक अनुराग था। वह दिन-रात उसीका चिन्तन किया करता था। किसी काममें उसका मन नहीं लगता था। फूल पहुँचाना भी उसे भार प्रतीत होता था। एक दिन हेममाली मानसरोवरसे फूल तो ले आया, किंतु पहुँचा न सका। बीचमें उसने अपनी पत्नीको देखना चाहा। पत्नीसे मिलनेके बाद वह सब कुछ भूल चुका था। उधर राजराज कुबेर मन्दिरमें बैठकर फूलकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अधिक समय बीत जानेपर राजराजका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उन्हें दूतोंसे पता चला कि वह घरमें ही बैठा है। कुबेरने उसे बुलवाया और डाँटकर कहा—'तूने भगवान् शंकरकी अवहेलना की है। अतः तुझे कोढ़ हो जाय और पत्नीसे भी तेरा वियोग हो जाय।'

शापके कारण उसे कुष्ठ हो गया और वह अपने घरसे बहुत दूर निकल गया, किंतु शिवपूजाके प्रभावसे उसकी स्मृति लुप्त नहीं हुई थी। वह रोता-बिलखता हुआ इधर-उधर चक्कर काटता रहता था। सौभाग्यसे उसे मार्कण्डेय ऋषि मिल गये। ऋषिने उसे आषाढ़मासकी 'योगिनी' एकादशीके व्रतका अनुष्ठान बताया। इस व्रतके प्रभावसे हेममालीका कोढ़ दूर हो गया और उसे स्वामीकी अनुकम्पा भी प्राप्त हो गयी।

(ख) शुक्लपक्षकी 'हरिशयनी' एकादशी—भगवान् विष्णु आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी एकादशीको अपने एक रूपसे राजा बलिके यहाँ शयन करते हैं और फिर कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी एकादशीको जागते हैं। चार मासतक भगवान् विष्णु सोये रहते हैं। अतः चातुर्मासमें मनुष्यको भूमिपर सोना चाहिये तथा श्रावणमें साग, भाद्रपदमें दही, आश्विनमें दूध और कार्तिकमें दालका त्याग कर देना चाहिये। गृहस्थके लिये कृष्णपक्षकी एकादशी वर्जित है, किंतु चौमासेमें कृष्णपक्षकी एकादशियाँ उनके लिये भी विहित हैं।

श्रावणमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'कामिका' एकादशी—युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'भगवन्! श्रावणमासके कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'इस सम्बन्धमें मैं तुम्हें एक उपाख्यान बताता हूँ, जिसे नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजीने बताया था। श्रावणमासके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'कामिका' है। इस एकादशीके दिन भगवान् विष्णुके पूजनसे जो फल मिलता है, वह गङ्गा, काशी, नैमिषारण्य, पुष्कर-क्षेत्रमें नहीं मिलता। पाप-पङ्कसे निकलनेके लिये 'कामिका' एकादशीका आश्रयण लेना चाहिये तथा तुलसीकी मञ्जरियोंसे भगवान्का पूजन करना चाहिये। मोती, मणि आदिके चढ़ानेसे भगवान् विष्णु उतना प्रसन्न नहीं होते, जितना तुलसीकी मञ्जरीके चढ़ानेसे होते हैं।

(ख) शुक्लपक्षकी 'पुत्रदा' एकादशी—माहिष्मतीपुरमें महीजित् नामक राजा राज्य करते थे। उन्हें कोई संतान न थी, इसलिये वे निरन्तर चिन्तित रहते थे। एक बार उन्होंने जनताको बुलाया और उनके सम्मुख अपना दुःख निवेदन किया—'मैंने अबतक जान-बूझकर कोई पाप नहीं किया है, फिर भी मुझे आजतक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। आप लोग इसपर ध्यान दें।'

इसके बाद कुछ लोग ऋषियों-मुनियोंकी खोजमें लग गये। उन्हें सौभाग्यसे महर्षि लोमशका दर्शन प्राप्त हुआ। उनके दर्शनसे लोगोंके हृदयमें आशाका संचार हो गया। उन्होंने विनम्रताके साथ मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनसे अपने राजाको पुत्र होनेका उपाय पूछा।

महर्षि लोमशने ध्यान लगाकर उन्हें बताया—'पूर्वजन्ममें राजा महीजित् लोगोंको चूसनेवाला धनहीन वैश्य था। वह फेरी लगाया करता था। एक बार वह प्याससे पीड़ित होकर एक जलाशयके पास पहुँचा। वहींपर बछड़ेके साथ एक प्यासी गौ भी आ पहुँची और जल पीने लगी। वैश्यने प्यासी गौको दूर हटा दिया और स्वयं पानी पिया। इसी पापसे वह पुत्रहीन है। यह राज्य तो उसके किसी अन्य जन्मका पुण्यफल है। वह श्रावणमासमें शुक्लपक्षकी 'पुत्रदा' नामकी एकादशीका व्रत करे।' प्रजाओंने विधि-विधानसे 'पुत्रदा' एकादशीका व्रत किया, रात्रि-जागरण किया और उसका फल राजाको दे दिया। इस व्रतके प्रभावसे राजाको पुत्र प्राप्त हुआ। (क्रमशः)

पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश

[गताङ्क पृ० ६१ से आगे]

रत्नविज्ञान[४५]— रत्नोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें पुराणोंमें एक कथा प्राप्त होती है, तदनुसार 'बल' नामका एक दैत्य था, जो सर्वथा अजेय था। उसने इन्द्रादि सभी देवताओंको परास्त कर दिया था। विवश होकर देवताओंने छलसे उसकी स्तुति कर वर देनेकी प्रार्थना की। उसने कहा—'आपलोग मुझसे वर माँगे।' देवताओंने कहा—'आप हमारे यज्ञ-पशु बनें।' बलने उसे स्वीकार कर लिया। उसीके शरीरके सभी अवयव एवं धातु रत्नरूपमें परिणत हो गये। उसके अङ्ग जहाँ-जहाँ गिरे, वहाँ-वहाँ रत्नोंके भण्डार पैदा हो गये। इन रत्नोंको राक्षस तथा (भूत-प्रेतादिबाधा) विष, सर्प, रोग एवं ग्रह-दोष, दुःख, चिन्ता और पापको भी नष्ट करनेवाला बताया गया है—

तेषु रक्षोविषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च।
प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च॥

(गरुड०, आ० ६८।८)

रत्न और मणि समानार्थक हैं। रत्न समुद्र, पर्वत, नदीगर्भ आदि स्थानोंके साथ-ही-साथ नाग, गज तथा शूकर आदिके सिरसे भी उत्पन्न कहे जाते हैं। विष्णुधर्मोत्तर (२।१५), गरुड (आ०अ० ६८—८०), अग्नि (अ० २४६), वायु (पू० ५७), मत्स्य (अ० ११९) तथा ब्रह्माण्डादि पुराणोंमें रत्नोंके नामादिके विषयमें महत्त्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होते हैं। कहीं- कहीं पाठभेद होनेसे यहाँ कुछके संशोधित नाम दिये जा रहे हैं—१-वज्र (हीरा), २-मरकत (पन्ना), ३-पद्मराग (माणिक्य), ४-मौक्तिक (मुक्ता), ५-इन्द्रनील (नीलम), ६-महानील, ७-वैदूर्य (लहसुनियाँ), ८-शस्यक (तृण-कान्तमणि), ९-चन्द्रकान्त तथा १०-सूर्यकान्त (ये दोनों मणियाँ क्रमशः चन्द्रमा और सूर्यके सामने पड़नेपर पिघलने लगती हैं), ११-स्फटिक, १२-पुलक, १३-कर्केतन (करकेणत), १४-पुष्पराग (पुखराज), १५-ज्योतीरस (पुखराजका भेद), १६-स्फटिक (बिल्लौरका एक भेद), १७-राजावर्त (लाजावर्त), १८-राजमय (राजमणि), १९-सौगन्धिक (पद्मरागका एक भेद), २०-शङ्खमणि, २१-गोमेद, २२-रुधिराक्ष (माणिक्यका एक भेद, रुधिराख्य), २३-भल्लातक, २४-धूलीमरकत, २५-तुत्थक (तुथक-नीलमका एक भेद), २६-सीस (काँचमणि), २७-पीलु, २८-प्रबाल (मूँगा), २९-गिरिवज्र, ३०-भुजगेश मणि (नागमणि), ३१-टीटिभ (एक प्रकारका बिल्लौर), ३२-तापिच्छ (दक्षिणभारतमें मिलनेवाला एक प्रकारका पद्मराग), ३३-भ्रामर (अयस्कान्तमणि), ३४-उत्पलमणि (पद्मराग या माणिक्यका एक भेद) तथा ३५-ब्रह्ममणि। इसके अतिरिक्त स्यमन्तक, कौस्तुभ तथा पुन्नाग आदि मणियोंके नाम भी पुराणोंमें प्राप्त होते हैं।

इन रत्नोंको रोग, दुःख तथा अनिष्ट-ग्रहोंकी शान्तिके लिये और विजयकी प्राप्तिके लिये सुवर्ण, रजत आदि धातुओंमें धारण कर पहननेका विधान है। इन मणियोंमें स्वच्छता, दीप्ति, स्निग्धता, गुरुता आदिकी विशेष गुणवत्ता कही गयी है। निष्प्रभ, मलिन, स्फुटित और क़ालिमा आदिसे युक्त रत्न धार्य नहीं होते। सूर्यादि नवग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः माणिक्य, मोती, मूँगा, पन्ना, पुष्पराग, वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद तथा वैदूर्यको धारण करना चाहिये।

गरुड आदि पुराणोंमें रत्नोंकी उत्पत्ति, इनकी उपयोगिता, परीक्षा, स्वरूप, मूल्य तथा भेदोपभेदादि बातोंका ही मुख्यरूपसे वर्णन है। रत्नधेनु तथा रत्नाचलके दान एवं राजप्रासादों और मन्दिरों आदिके वर्णनमें भी रत्नोंकी चर्चा पुराणोंमें हुई है।[१]

पुराणोंमें पूर्वोक्त परिगणित प्रायः सभी मणियोंसे सम्बद्ध कोई-न-कोई कथा प्राप्त होती है, परंतु कुछ मणियोंकी कथाएँ विशेष रूपसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे यहाँ केवल 'कौस्तुभमणि' तथा स्यमन्तकमणि, जो भगवान् विष्णुके आभूषणके रूपमें विख्यात हैं, का कुछ कथात्मक परिचय दिया जा रहा है—

१-शुक्रनीति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिसार, रत्नसार, वाराहीसंहिता, रसरत्नसमुच्चय, भोजराजके युक्तिकल्पतरु, वसवराजके शिवतत्त्वरत्नाकर (शैवरत्नाकर) तथा सोमदेवके मानसोल्लास या अभिलषितार्थचिन्तामणिमें रत्नोंका साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है।

(१) **कौस्तुभमणि**—संसारके सभी मणियों (रत्नों)में कौस्तुभका विशिष्ट स्थान है; क्योंकि वह नित्य ही भगवान्की ग्रीवा और वक्षःस्थलके अन्तरालमें सुशोभित रहती है[१]। यह समुद्र-मन्थनके समय पाँचवीं संख्यापर प्रकट हुई थी। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं पद्मरागो महोदधेः ।
तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ ॥

'कौस्तुभ नामक पद्मरागमणि समुद्रसे निकली। उस मणिको अपने हृदयपर धारण करनेके लिये अजित भगवान्ने लेना चाहा।'

इसका रंग लाल कमलके समान कान्तिवाला होता है। इसे पद्मराग (माणिक्य) भी कहा जाता है। अब भी अधिकतर यह समुद्रके भीतर अथवा समुद्रके तटवर्ती स्थानोंपर प्राप्त होता है।

पुराणोंके अनुसार पूर्वोक्त कथा यद्यपि रैवत मन्वन्तरसे सम्बन्धित है तथापि इसे भगवान्का नित्य आभूषण माना गया है। अग्निपुराण अ० २५में इसका '**ॐ छं तं पं कौस्तुभाय नमः**' यह मन्त्र दिया गया है। समुद्र-मन्थनमें जो चौदह पदार्थ निकले थे, वे सभी रत्न कहे गये हैं। इन सबमें 'कौस्तुभ' सर्वातिशायित्वका सूचक है। इसीलिये इस विष्णुरत्न-कौस्तुभसे अन्य तेरहकी रत्नता हुई।

(२) **स्यमन्तकमणिकी कथा**[२]—द्वारकावासी वृष्णिवंशीय निम्नके पुत्र सत्राजित्ने उपासनाके द्वारा भगवान् सूर्यसे मित्रता प्राप्त कर ली थी। प्रसन्न होकर सूर्यने अपने गलेसे महामणि स्यमन्तकको उतारकर उसे दे दिया। सत्राजित्ने उसे अपने गलेमें धारण कर लिया। उस मणिके अपार तेजसे द्वारकावासी सत्राजित्को सूर्य समझकर प्रणाम करने लगे। उस मणिके प्रभावसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्नि तथा सर्पभय, रोग, चोर और दुर्भिक्ष नहीं होते थे। उसका यह प्रभाव था कि वह प्रतिदिन आठ भार (एक क्विंटलसे कुछ अधिक) सोना प्रकट करती थी।

एक दिन सत्राजित्का छोटा भाई प्रसेनजित् उस मणिको गलेमें धारणकर वनमें मृगयाके लिये गया। वहाँ मणिकी ज्योतिसे घबड़ाकर एक सिंहने उसपर आक्रमण कर उसे मार डाला और मणि ले ली। बादमें जाम्बवान् ऋक्षने भी मणिके लिये उस सिंहको मार डाला और उससे मणि लेकर वह अपनी गुफामें लौट आया।

जब बहुत दिनोंतक प्रसेन वापस नहीं लौटा तो नगरमें यह प्रवाद फैल गया कि मणिके लोभमें श्रीकृष्णने उसे मरवा डाला है। अपने कलंकको दूर करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने साथियोंके साथ पता लगाते हुए जंगलमें पहुँचे तो उन्होंने प्रसेनको मरा हुआ देखा। उसके गलेमें मणि नहीं थी, किंतु वहाँसे आगेतक एक सिंहके पदचिह्न बने हुए थे। सभी लोग उसका अनुसरण करते हुए जब कुछ दूर आगे गये तो वहाँ सिंह भी मरा पाया गया, परंतु मणि वहाँ भी न थी। उसके आगे एक रीछ (ऋक्ष)के पदचिह्न दीखने लगे, जो थोड़ी दूरपर एक गुफाके पासतक जाकर समाप्त हो गये थे। गुफामें जानेपर देखा कि एक धाय उस मणिको हाथमें लिये एक बच्चेको लोरी गाती हुई कह रही थी—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥

(विष्णु० ४।१३।४२)

'सिंहने प्रसेनको और जाम्बवान्ने सिंहको मारकर यह मणि ली है। हे सुकुमार! अब तुम रोओ मत, यह मणि तुम्हारी ही है।' उसी समय धायने जब श्रीकृष्णको वहाँ खड़े देखा तो वह भयके मारे उच्च स्वरसे चिल्लायी, जिससे जाम्बवान् क्रोधपूर्वक वहाँ आया और उनसे युद्ध करने लगा। २१ दिनोंतक (मतान्तरसे २८ दिन) उनका युद्ध चला। अन्तमें जाम्बवान्को यह ज्ञान हो गया कि ये हमारे स्वामी श्रीरामके ही अवतार श्रीभगवान् श्रीकृष्ण हैं। तब उसने प्रणामपूर्वक अपनी कन्या जाम्बवती और वह स्यमन्तकमणि उन्हें दे दी। भगवान् उन्हें लेकर द्वारकामे लौट आये और मणि सत्राजित्को सौंपकर अपना कलंक दूर किया। प्रसन्न होकर सत्राजित्ने अपनी कन्या सत्यभामा तथा वह मणि भगवान्को समर्पित की, परंतु उन्होंने मणि उसे वापस लौटा दी।

१-कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ (श्रीमद्भा० ३।२८।२६)

२-प्रायः सभी पुराणोंमें यह कथा आयी है तथापि विष्णुपुराण (४।१३)में इसका सर्वाधिक विस्तार है।

कुछ समयके बाद जब एक बार श्रीकृष्ण पाण्डवोंको देखने वारणावत चले गये, तब मणिके लोभी यदुवंशी क्षत्रिय शतधन्वाने (जो सत्यभामाको भी प्राप्त करना चाहता था) सोते समय सत्राजित्का वध कर दिया और मणिका अपहरण कर लिया।

दुःखी सत्यभामाने वारणावतमें जाकर पिताकी हत्या तथा मणि छीने जानेकी बात श्रीकृष्णको बतायी। श्रीकृष्णने लौटकर बलरामके साथ शतधन्वाके वधके लिये उपक्रम किया। शतधन्वाने अपनी सहायताके लिये कृतवर्मा तथा अक्रूरसे सहयोगकी याचना की, किंतु निराश होनेपर वह भयभीत होता हुआ जनकपुरकी ओर भाग गया तथा मणि अक्रूरको सौंप गया। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामने उसका पीछा किया। उसके पास पहुँचकर श्रीकृष्णने बलरामसे कहा—'आप रथमें बैठे रहें, मैं अभी उसे मारकर आता हूँ' और तब उन्होंने चक्रसे उसका सिर काट डाला; परंतु खोज करनेपर उसके पास वह मणि न मिली। उन्होंने बलरामजीको मणिके न मिलनेकी बात बतायी। बलदेवजीको उनकी बातोंपर विश्वास नहीं हुआ। अतः वे रुष्ट होकर तीन वर्षोंतक जनकपुरमें ही रहे। श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये, पर मणिकी उन्हें चिन्ता लगी थी।

अक्रूर उस मणिके प्रभावसे अतुलित धन पाकर नित्य बड़े-बड़े यज्ञानुष्ठान करते रहते थे। एक बार वे द्वारकासे बाहर चले गये तो उनके जाते ही द्वारकामें रोग, दुर्भिक्ष, महामारी और अनेक उपद्रव होने लगे। इस प्रकारकी अन्य कई परिस्थितियोंसे श्रीकृष्णने यह अनुमान कर लिया कि वह 'मणि' अवश्य ही अक्रूरके पास है और मणिके प्रभावसे ही ऐसा हो रहा है। उन्होंने अक्रूरको सभामें बुलाया और वह मणिरत्न बलदेवको दिखानेके लिये अनुरोध किया। अक्रूरने समझा कि इन्हें 'मणि मेरे पास है' यह पता चल गया है, इसीलिये ये दिखानेको कह रहे हैं। लज्जित होते हुए उन्होंने कमरमें सोनेकी पिटारीमें छिपायी वह मणि खोलकर दरबारमें रख दी और कहा कि 'यह जिसकी हो ले ले।' इसपर बलराम और सत्यभामा दोनों उसे लेनेके लिये उद्यत हुए, किंतु श्रीकृष्णने स्यमन्तकमणिको अक्रूरके पास ही रहने देना उचित समझा और वह मणि अक्रूरके पास रह गयी।

सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह स्यमन्तकमणि-आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलंकोंका मार्जन करनेवाला तथा परममङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर शान्तिका अनुभव करता है।[१]

नीतिशास्त्र[४६]—वेदोंमें 'नीति'को सानुमती, राका आदिके समान मूर्तिमती विद्याके रूपमें निरूपित किया गया है। श्रीतत्त्वनिधिमें इसे देवता-स्वरूप माना गया है[२]। विष्णुपुराणके अनुसार 'नीति' साक्षात् भगवती लक्ष्मीदेवीका ही स्वरूप है[३]। सामान्यतया नीतिशास्त्रमें श्रेष्ठतम लोक-व्यवहारका निरूपण होता है और नीतिमान् व्यक्ति ही नेता बनकर सर्वत्र पूजित होता है। वैदिक नीति-ग्रन्थ 'नीतिमञ्जरी'के प्रारम्भिक श्लोककी व्याख्यामें श्रीद्याद्विवेदने कहा है कि कर्तव्याकर्तव्य-विधायक शास्त्र या धर्म-कर्म ही नीति है और इस नीतिके परिज्ञानसे धर्ममें रति होती है तथा अधर्ममें विरति होती है[४]। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि धर्मादि पुरुषार्थोंका अवबोध करानेवाला तथा उनकी प्राप्ति करानेवाला शास्त्र नीति-शास्त्र है। मत्स्यपुराण (अ० २२३) में सामान्य नीतिके अतिरिक्त राजनीतिके साम, दान, दण्ड भेद, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल—ये सात भेद बताये गये हैं।

पुराणोंमें नीतिशास्त्र-सम्बन्धी विस्तृत साहित्य भरा पड़ा

१-यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च। आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥ (श्रीमद्भा० १०।५७।४२)

२-यहाँ सामनीतिको देवीरूपमें तथा दान, भेद तथा दण्डनीतिको तीन पृथक्-पृथक् देवताओंके रूपमें चित्रित करते हुए उनका क्रमशः स्वर्णके समान पीला, लाल, नीला तथा लाल रंग बताया गया है और राजाके लिये निर्देश है कि शत्रु आदिको पराजित करनेके लिये इन नीति-देवोंका पूजन करना चाहिये (श्रीतत्त्वनिधि, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० ११४-११५)।

३-'आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च।' (विष्णुपु० १।९।१२१)

४-'एवं कर्तव्यमेवं न कर्तव्यमित्यात्मको यो धर्मः सा नीतिः। इमां ज्ञात्वा धर्मे रतिरधर्मे विरतिर्भवति।' (नीतिमञ्जरी)

है। धौम्यनीति, कणिकनीति, शुक्रनीति, रामोक्तनीति आदि नीतिकारोंके व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक अनुभवोंका संदेश पुराणोंमें प्रचुरतया उपलब्ध होता है, किंतु इनमें भी बृहस्पति तथा शुक्राचार्यद्वारा जो नीतिके उपदेश हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। इसीलिये पुराणोंमें मुख्यरूपसे इन दोनों आचार्योंके उपदेशोंको आदरपूर्वक स्थान दिया गया है। आचार्य बृहस्पतिने इन्द्रको इस नीतिका उपदेश किया था और इसी बृहस्पति-नीतिका आश्रय लेकर इन्द्र देवराज हुए, उन्होंने समस्त असुरोंपर विजय पायी और चिरकालतक स्वर्गपर शासन किया।

प्रायः सभी पुराणोंमें बीच-बीचमें नीतिके उपदेश मिलते हैं, किंतु गरुडपुराणके आचारकाण्डमें अध्याय १०८ से ११५ तकके अध्याय (लगभग ४०० श्लोक) विशेष महत्त्वके हैं। जिसमें सात अध्यायोंमें बृहस्पतिनीतिका सार संगृहीत है और एक अध्यायमें महाशाल शौनकके नीतियोंका निचोड़ है। इसका एक-एक श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय है। इसकी बातें बड़ी मार्मिक, तर्कसंगत एवं तत्काल लाभ पहुँचानेवाली हैं। इसके अधिकांश श्लोकोंमें सत्सङ्गकी विशेष महिमा गायी गयी है। प्रारम्भमें ही कहा गया है कि—

'सिद्धिकी इच्छावाले व्यक्तिको सदा सज्जनोंकी ही सङ्गति करनी चाहिये। दुष्टोंकी संगति कभी नहीं करे; क्योंकि उससे लोक या परलोकमें कहीं कोई हित नहीं होता। मूर्ख शिष्योंके उपदेशसे, दुष्ट स्त्रीके पालन-पोषण करनेसे और दुष्टोंके व्यवहार-संसर्गसे पण्डित व्यक्ति भी क्लेश पाता है। उत्तम व्यक्तियोंकी संगतिसे और पण्डितोंके साथ वार्तालाप तथा निर्लोभी व्यक्तिके साथ मैत्री करनेसे क्लेश नहीं होता।'

सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः।
नासद्भिरिह लोकाय परलोकाय वा हितम्॥
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुष्टानां सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति॥
उत्तमैः सह साङ्गत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम्।
अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति॥

(ग० पु०, आ० १०८।२,४,१२)

इसी प्रकार साररूपमें आगे कहा गया है—

'दुर्जनका संसर्ग छोड़ देना चाहिये, साधुओंकी संगति करनी चाहिये, रात-दिन पुण्य करते रहना चाहिये और संसारकी अनित्यताको ध्यानमें रखना चाहिये।'

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

(ग० पु०, आ० १०८।२६)

कहाँ-कहाँ निवास करना चाहिये इस विषयमें कहा गया है कि जहाँ रहनेसे सम्मान, प्रीति, बान्धव, विद्या, लोकव्यवहार, यश आदि कुछ न प्राप्त हो और जहाँ वैद्य, धनी, वेदज्ञाता, राजा, सज्जन व्यक्ति तथा ज्योतिषी आदि न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। दुष्ट-कुलसे हविर्द्रव्य, बालकसे सुन्दर नीति, अपवित्र स्थानसे सुवर्ण, विषसे अमृत, नीचसे उत्कृष्ट विद्या तथा निम्नकुलसे भी स्त्रीरत्नको ग्रहण कर लेना चाहिये। मनुष्यकी आकृति, शील, कुल, विद्या, ज्ञान तथा अन्य गुण भी काम नहीं देते। जन्मान्तरमें किये हुए सत्कर्म ही समयपर वृक्षोंकी भाँति सुन्दर फल प्रदान करते हैं। जिस प्रकार सहस्रों गायोंके बीचमें बछड़ा अपनी माँको पहचानकर उसके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार प्राणीके कर्म भी समयानुसार उसके पास फल-प्रदानके लिये पहुँच जाते हैं—

शीलं कुलं नैव न चैव विद्या
ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धिः।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि
काले फलन्त्यस्य यथैव वृक्षाः॥
भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्तारमनुतिष्ठति।
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्॥

(ग० पु०, आ० काण्ड ११३।५२, ५४)

अन्तमें कहा गया है कि—

जैसे-जैसे व्यक्ति शास्त्रोंका स्वाध्याय करता जाता है, वैसे-वैसे उसकी ज्ञानशक्ति और धारणाशक्ति बढ़ती जाती है तथा वैदुष्य चमत्कृत होता जाता है।'

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथास्य मेधा स्याद्विज्ञानं चास्य रोचते॥

और—जैसे-जैसे व्यक्ति परोपकार और सदाचारमें मन लगाता है, वैसे-वैसे उसकी लोकप्रियता बढ़ती है और वह सौभाग्यका भाजन होता है।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम्।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रियः॥

(ग०, आ० काण्ड ११५।४३)

अतः सदा-सर्वदा शास्त्रोंके स्वाध्यायमें, परोपकारके कार्योंमें तथा सदाचरणोंमें ही निरत रहना चाहिये। इसीमें कल्याण है।

यह बृहस्पतिनीति अत्यन्त महत्त्वकी है। सभी नीतियोंमें यह सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक है। इसीलिये विदुरनीति, चाणक्यनीति, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, पुरुषपरीक्षा, कामन्दक-नीतिसार तथा भर्तृहरिनीतिशतकपर इसका प्रचुर प्रभाव स्पष्ट दीखता है। न केवल भावमात्र ही अपितु कई श्लोक भी यथावत् इनमें प्राप्त होते हैं।

काव्यशास्त्र[४७]— पुराणोंमें ही सर्वप्रथम काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र अथवा अलङ्कारशास्त्रका विवेचन उपलब्ध होता है। इन्हींमें उपलब्ध सूत्रात्मक तथ्योंको परवर्ती भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन, मम्मट तथा विश्वनाथादि आचार्योंने अपने-अपने लाक्षणिक ग्रन्थोंमें विस्तारसे विवेचित किया है। पुराणोंमें भी अग्निपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरमें महत्त्वपूर्ण सामग्री है। काव्यकी महिमा, लक्षण, प्रयोजन, भेद, रस, गुण, अलङ्कार, रीति तथा नाट्यशास्त्र और नृत्य-शास्त्र आदिपर विस्तृत जानकारी मिलती है। अग्निपुराणमें कहा गया है—संसारमें मनुष्य-जीवन दुर्लभ है, उसमें भी विद्या तो और भी दुर्लभ है। विद्या होनेपर भी कवित्वका गुण आना कठिन है, उसमें भी काव्य-रचनाकी पूर्ण शक्तिका होना अत्यन्त कठिन है। शक्तिके साथ बोध और प्रतिभा हो, यह और भी कठिन है, इन सबके होते हुए विवेकका होना तो परम दुर्लभ है। कोई भी शास्त्र क्यों न हो, अविद्वान् पुरुषोंके द्वारा उसका अनुसंधान किया जाय तो उससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता[१]।

काव्यका लक्षण करते हुए कहा गया है—**'काव्यं स्फुटदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम्'** (अग्नि० ३३७।७) जिसमें अलङ्कार भासित होता हो, गुण विद्यमान हो तथा दोषका अभाव हो, ऐसे वाक्यको काव्य कहते हैं। लोक-व्यवहार तथा वेदशास्त्रका ज्ञान—ये काव्य-प्रतिभाकी योनि हैं। काव्य गद्य-पद्य-मिश्र इस प्रकारसे तीन प्रकारका होता है। गद्य काव्यके आख्यायिका, कथा, खण्ड-कथा, परिकथा एवं कथानिका—ये पाँच भेद बताये गये हैं। पद्यकाव्यके महाकाव्य, कलाप, पर्यायबन्ध, विशेषक, कुलक, मुक्तक तथा कोष—ये सात भेद हैं। विष्णुधर्मोत्तरमें कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्टयके उपदेशरहित, किंतु कान्तासम्मित परामर्श एवं निवेदनयुक्त सुमधुर रचनाको काव्य कहा जाता है—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शास्त्रं स्यादुपदेशकम्।
तदेव काव्यमित्युक्तं चोपदेशं विना कृतम्॥

(विष्णुधर्मोत्तर० ३।१५।१, २)

तदनन्तर महाकाव्यों आदिका लक्षण निर्दिष्ट है। फिर समागता, वन्दिता, दुःखिता, परिहासिका, परुषा, संख्याता, कल्पिता आदि प्रहेलिका काव्योंके स्वरूप तथा लक्षण बताये गये हैं।

अग्निपुराणमें रूपकके २७ भेद माने गये हैं (अग्नि० ३३८।१)। किंतु विष्णुधर्मोत्तरने रूपकके नाटक, नाटिका, प्रकरण, प्रकरणी, समवकार, ईहामृग, निवृत्त, एकाङ्की, ऐकाहिकव्यायोग, वीथी, डिम तथा प्रहसन—ये बारह भेद माने हैं (विष्णुधर्मो० ३।१७)। अलङ्कारोंकी परिभाषा करते हुए कहा गया है—**'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्ष्यते॥'** (अग्नि० ३४२।१७) काव्यसौन्दर्यकी अभिवृद्धि करनेवाले धर्मोंको 'अलङ्कार' कहते हैं। वे शब्द, अर्थ एवं शब्दार्थ—इन तीनोंको अलंकृत करनेसे तीन प्रकारके होते हैं। अग्निपुराणमें इन तीनों प्रकारके भेदोपभेदोंका विस्तारसे वर्णन है, किंतु विष्णुधर्मोत्तर (अ० १५) में केवल १७ अलङ्कारोंका ही वर्णन है।

अग्निपुराण अध्याय ३४६ में काव्यके गुणोंका विवेचन करते हुए कहा गया है कि 'जैसे नारीके यौवनजनित लालित्यसे रहित शरीरपर हार भी भारस्वरूप ही होता है, वैसे ही गुणहीन

१-नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र च दुर्लभा॥ कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा। व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः॥ सर्वं शास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिध्यति। (अग्नि० ३३७।३-५)

काव्य अलंकारयुक्त होनेपर भी सहृदयके लिये प्रीतिकारक नहीं होता।'

अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत्।
वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम्॥

अग्निपुराण अ० ३३९में शृंगारादि नौ रसोंका वर्णन विस्तारसे हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर (३।३०) में इन नौ रसोंके लक्षण दिये गये हैं तथा संगीतशास्त्रके गीतलक्षण, सप्तस्वरोंकी उत्पत्ति, ३ ग्राम, २१ मूर्च्छना, ४९ तान, ३ वृत्ति, स्वर, ताल, लय, गायक, वादक तथा वाद्योंके भेद, अभिनय-कला, नृत्य-लास्यादिके भेद, विभिन्न अभिनयों आदिका वर्णन भी प्राप्त होता है। अन्तमें नृत्यशास्त्रके माहात्म्यमें बताया गया है—नृत्त, गीत तथा वाद्यादिके द्वारा भगवान् विष्णुको प्रसन्न करना चाहिये, उससे यज्ञके फलके समान सभी कामनाओंकी पूर्ति होती है। धर्मके जाननेवालेको नृत्तके द्वारा भगवान्की आराधना करनी चाहिये, इससे सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं और मोक्ष-प्राप्तिका मार्ग भी प्रशस्त होता है। वह सौभाग्य, कीर्ति, आयु तथा स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

नृत्तं गीतं तथा वाद्यं दत्त्वा देवाय विष्णवे।
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते॥
देवताराधनं कुर्याद्यस्तु नृत्तेन धर्मवित्।
स सर्वकामानाप्नोति मोक्षोपायं च विन्दति॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गलोकप्रदं तथा।

(विष्णुधर्मो० ३।३५।२७, २९,३०)

उपसंहार

पूर्वोक्त विवरणमें पुराणोंमें वर्णित कतिपय शास्त्रोंका संक्षिप्त दिग्दर्शनमात्र किया गया है। इस विवरणसे पुराण-वाङ्मयके वैविध्य तथा वैशद्यका स्वल्प परिचय तो प्राप्त होता ही है, साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पुराणोंके स्वाध्यायसे प्रायः सभी शास्त्रोंका परिज्ञान हो जाता है। इससे पुराणोंकी उपादेयता एवं महत्ता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पूर्वोक्त परिगणित शास्त्रोंके अतिरिक्त पुराणोंमें कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र तथा इतिहास-भूगोलसे सम्बद्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री है। कर्मकाण्ड तथा धर्मशास्त्रके महत्त्वपूर्ण पक्षोंका विवेचन आगेके अध्यायोंमें किया गया है (अतः वहीं देखना चाहिये)। पुराणोंके सर्ग-प्रतिसर्गादि जो पञ्च लक्षण कहे गये हैं, उनमें सृष्टि-विद्या तथा प्रतिसृष्टिके साथ ही मन्वन्तर, वंश और वंशानुचरितमें मुख्यरूपसे सृष्टिसे पूर्व तथा पश्चात्का प्रामाणिक इतिवृत्त प्राप्त होता है। यह वर्णन पुराणोंके अतिरिक्त अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।

सृष्टि-विद्याके अन्तर्गत ब्रह्मसर्ग, भूतसर्ग, वैकारिकसर्ग, मुख्यसर्ग, तिर्यक्सर्ग, देवसर्ग, मानुषसर्ग, अनुग्रहसर्ग तथा कौमारसर्ग—इन नवविध सृष्टियों (मतान्तरसे दशविध) का इतिहास और उनका विस्तृत वर्णन है। इन नवविध सर्गोंमें चराचर जगत्की उत्पत्तिका इतिहास वर्णित है। देवताओं तथा गन्धर्वादि देवयोनियों, पितरों, ऋषियों, असुरों, मानवों और तिर्यक्योनियोंकी उत्पत्तिका आख्यान बताया गया है, पुनः वंश तथा वंशानुचरितमें देवताओं, ऋषियों एवं राजवंशोंके चरित्रोंका इतिहास आख्यानोंके माध्यमसे वर्णित है। प्रायः सभी पुराणोंमें ये विषय कहीं संक्षिप्त तथा कहीं विस्तारसे विवृत हैं।

पुराणोंमें जो भूगोलशास्त्रका वर्णन है उसे पारिभाषिक शब्दावलीमें 'भुवनकोश-वर्णन' कहा गया है। भूगोलमें तो केवल इस पृथ्वीलोकका ही वर्णन होता है, किंतु पौराणिक भूगोलमें न केवल भूलोकका ही अपितु तेरह अन्य लोकोंका भी वर्णन किया गया है। इसलिये 'भूगोल' शब्द न कहकर 'भुवनकोश' यह नाम दिया गया है। पौराणिक मान्यतामें निखिल ब्रह्माण्डके भीतर चौदह भुवन हैं, जो ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक तथा अधोलोक—इन तीनों लोकोंमें विभक्त हैं। मध्यलोक भूलोक है। इसके ऊपर क्रमशः भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक—ये छः लोक हैं। भूलोकके नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल तथा पाताल—ये सात अधोलोक हैं।

भूलोकका दूसरा नाम सप्तद्वीपा वसुमती (मतान्तरसे चतुर्द्वीपा) है, जिसमें जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं। इसीलिये यह पृथ्वी सप्तद्वीपा वसुमती कहलाती है। ये सातों द्वीप लवण, इक्षु, सुरा आदि सात सागरोंसे आवृत हैं। स्वायम्भुव मनुके द्वितीय

पुत्र प्रियव्रतने अपने सात पुत्रों—आग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य तथा सवनको क्रमशः इन सात द्वीपोंका सम्राट् नियुक्त किया। ये सभी धर्मात्मा तथा प्रतापी थे।

इन सात द्वीपोंमें जम्बूद्वीप ही प्राचीनतम बृहत्तम भारतवर्षका नाम है। यहाँके आदि अधिपति महाराज आग्नीध्र थे। इनके प्रजापतिके समान नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्र थे। राजा आग्नीध्रने जम्बूद्वीपके नौ भाग करके अपने नौ पुत्रोंको वहाँका अधिपति बनाया। ये नौ विभाग नौ वर्ष (भूखण्ड) कहलाते हैं, जो इन्हीं पुत्रोंके नामसे प्रसिद्ध हुए। ज्येष्ठपुत्र नाभिके भूखण्डको अजनाभवर्ष कहा गया है। महाराज नाभिको भगवान् यज्ञपुरुषकी उपासनासे धर्मभार्या मेरुदेवीके गर्भसे ऋषभदेव नामक एक दिव्य पुत्रकी प्राप्ति हुई (ये ही भगवान्के ऋषभ-अवतार कहलाते हैं)। ऋषभदेवजीके सौ पुत्रोंमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र महायोगी भरत हुए। इन्हींके नामसे अजनाभवर्षका नाम भारतवर्ष पड़ा।

भारतवर्षके वर्णनमें यहाँके पर्वतों, नदियों, नगरों, ग्रामों आदिके रमणीय चित्रणके साथ ही वहाँ निवास करनेवाली जातियोंका भी वर्णन है। वहाँ राज्य करनेवाले राजाओंके नामपर ही तत्तत्स्थानोंका नामकरण हुआ है। कोई-न-कोई देश या नगरी किसी-न-किसी राजाके द्वारा बसायी गयी है। जैसे उत्कल राजाके नामपर औड्र (उड़ीसा), राजा शर्यातिके पुत्र आनर्तके नामपर आनर्तदेश (सौराष्ट्र-गुजरात), आनर्तके पुत्र रेवतके नामपर रेवत पर्वत तथा ययातिके वंशमें उत्पन्न राजा बलिके पाँच पुत्रों—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म और पौण्ड्रके नामपर पाँच देशोंके नाम पड़े। '**अङ्गवङ्गकलिङ्गसुह्मपौण्ड्राख्यं बालेयं क्षत्रमजन्यत। तन्नामसंततिसंज्ञाश्च पञ्चविषया बभूवुः**' (विष्णु० ४।१८।१३-१४)।' इसी प्रकार राजा विशालके नामपर विशाला (वैशाली), युवनाश्वके पुत्र शावस्तके नामपर शावस्ती (श्रावस्ती) तथा कुरु, पाञ्चाल आदि जनपदोंके नाम भी विशिष्ट राजाओं और विशिष्ट व्यक्तियोंके नामपर ही प्रसिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्धमें अनेक रोचक आख्यान भी उपलब्ध होते हैं। प्रायः सम्पूर्ण भुवनकोशवर्णन [illegible] [illegible] ही उपवर्णित है। पुराणोंका यह भूगोल-वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक भी है।

पुराणोंमें वर्णित अन्य शास्त्रोंमें भक्तिशास्त्र, वाणिज्यशास्त्र (वार्त्ता), मानशास्त्र (माप-तौलसे सम्बद्ध), कृषिशास्त्र, पशुपाल्यशास्त्र, राजशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, शाकुनशास्त्र, स्वरोदयशास्त्र, पाकशास्त्र, व्यूहशास्त्र, शस्त्रविद्या, तक्षशास्त्र (काष्ठ-शिल्पकला), मल्लशास्त्र, वायसविद्या, बालतन्त्र, कोशविद्या, रतिशास्त्र, लिपिविज्ञान, गन्धशास्त्र (सुगन्धित द्रव्योंसे सम्बद्ध) तथा धातुशास्त्र आदि मुख्य हैं। यहाँ विस्तारभयसे तथा स्थानाभावके कारण उनका समावेश नहीं हो सका है।

चौंसठ कलाएँ और पुराण—विभिन्न ग्रन्थोंमें अलग-अलग प्रकारकी ६४ कलाओंके नाम प्राप्त होते हैं। पुराणोंमें यद्यपि स्वतन्त्र-रूपसे एक स्थलपर इन कलाओंका परिगणन प्राप्त नहीं होता, किंतु विष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण, तथा स्कन्दपुराणमें यत्र-तत्र गीत-वाद्य, नृत्य-आलेख्य, चित्रकर्म, माल्य-ग्रथन, भूषणयोजन, अलंकरण आदि कलाओंका वर्णन हुआ है। भागवत (१०।४५।३६) तथा विष्णुपुराण (अ० ५) में भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामद्वारा गुरु सांदीपनिके पास चौंसठ कलाओंके सीखनेकी बात आयी है।

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः।

अर्थात् केवल चौंसठ दिन-रातमें ही संयत्त दोनों भाइयोंने चौंसठों कलाओंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार भगवान् कल्किद्वारा भी परशुरामजीसे चौंसठ कलाओं तथा साङ्गोपाङ्ग वेद और धनुर्वेदादि शास्त्रोंके सीखनेकी बातका उल्लेख कल्किपुराणमें हुआ है—

साङ्गं चतुःषष्टिकलं धनुर्वेदादिकं च यत्।
समधीत्य जामदग्न्यात् कल्किः प्राह कृताञ्जलिः॥

(कल्किपु० १।३।६)

आचार्य श्रीधरने भागवत (१०।४५।३६)की श्रीधरीटीकामें भगवान्द्वारा चौंसठ कलाओंके सीखनेका विवरण इस प्रकार दिया है—

१-गानविद्या, २-वाद्य—भाँति-भाँतिके बाजे बजाना, ३-नृत्य, ४-नाट्य, ५-चित्रकारी, ६-बेल-बूटे बनाना,

७-चावल और पुष्पादिसे पूजाके उपहारकी रचना करना, ८-फूलोंकी सेज बनाना, ९-दाँत, वस्त्र और अङ्गोंको रँगना, १०-मणियोंकी फर्श बनाना, ११-शय्या-रचना, १२-जलको बाँध देना, १३-विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना, १४-हार-माला आदि बनाना, १५-कान और चोटीके फूलोंके गहने बनाना, १६-कपड़े और गहने बनाना, १७-फूलोंके आभूषणोंसे शृंगार करना, १८-कानोंके पत्तोंकी रचना करना, १९-सुगन्धित वस्तुएँ— इत्र, तैल आदि बनाना, २०-इन्द्रजाल— जादूगरी, २१-चाहे जैसा वेश धारण कर लेना, २२-हाथकी फुर्तीके काम, २३-तरह-तरहकी खानेकी वस्तुएँ बनाना, २४-तरह-तरहके पीनेके पदार्थ बनाना, २५-सूईका काम, २६-कठपुतली बनाना, नचाना, २७-पहेली, २८-प्रतिमा आदि बनाना, २९-कूटनीति, ३०-ग्रन्थोंके पढ़ानेकी चातुरी, ३१-नाटक, आख्यायिका आदिकी रचना करना, ३२-समस्यापूर्ति करना, ३३-पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना, ३४-गलीचे, दरी आदि बनाना, ३५-बढ़ईकी कारीगरी, ३६-गृह आदि बनानेकी कारीगरी, ३७-सोने, चाँदी आदि धातु तथा हीरे-पन्ने आदि रत्नोंकी परीक्षा, ३८-सोना-चाँदी आदि बना लेना, ३९-मणियोंके रंगको पहचानना, ४०-खानोंकी पहचान, ४१-वृक्षोंकी चिकित्सा, ४२-भेड़ा, मुर्गा, बटेर आदिको लड़ानेकी रीति, ४३-तोता-मैना आदिकी बोलियाँ बोलना, ४४-उच्चाटनकी विधि, ४५-केशोंकी सफाईका कौशल, ४६-मुट्ठीकी चीज या मनकी बात बता देना, ४७-म्लेच्छ-काव्योंका समझ लेना, ४८-विभिन्न देशोंकी भाषाका ज्ञान, ४९-शकुन-अपशकुन जानना, प्रश्नोंके उत्तरमें शुभाशुभ बतलाना, ५०-नाना प्रकारके मातृकायन्त्र बनाना, ५१-रत्नोंको नाना प्रकारके आकारोंमें काटना, ५२-साङ्केतिक भाषा बनाना, ५३-मनमें कटकरचना करना, ५४-नयी-नयी बातें निकालना, ५५-छलसे काम निकालना, ५६-समस्त कोशोंका ज्ञान, ५७-समस्त छन्दोंका ज्ञान, ५८-वस्त्रोंको छिपाने या बदलनेकी विद्या, ५९-द्यूतक्रीडा, ६०-दूरके मनुष्य या वस्तुओंका आकर्षण कर लेना, ६१-बालकोंके खेल, ६२-मन्त्रविद्या, ६३-विजय प्राप्त करानेवाली विद्या, ६४-वेताल आदिको वशमें रखनेकी विद्या।

उपर्युक्त चौंसठ कलाओंका कामसूत्रकी जयमंगलाटीका तथा शिवमहिम्नःस्तोत्र (श्लोक ८) की हरिहरात्मिकाटीकामें भी उल्लेख है। शुक्रनीति (अ० ४ प्रकरण ३) में जो चौंसठ कलाएँ बतायी गयी हैं, वे इनसे सर्वथा भिन्न हैं। इसी प्रकार शिवतत्त्वरत्नाकर और श्रीतत्त्वनिधिमें बतायी गयी ६४ कलाएँ एक ही समान हैं, किंतु ये उपर्युक्त दोनोंसे भिन्न हैं।

पुराणोक्त दिव्य विद्याएँ और सिद्धियाँ

पुराणोंमें अनेक दिव्य विद्याओं तथा सिद्धियोंके नाम आये हैं और उनकी प्राप्तिके अनेक उपाय भी निर्दिष्ट हैं। इन्द्रिय, प्राण और मनको अपने वशीभूत करने तथा प्रभुमें चित्तकी धारणा कर लेनेपर वे सिद्धियाँ शीघ्र ही सिद्ध हो जाती हैं। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके १५वें अध्यायमें अनेक सिद्धियोंके लक्षण तथा प्राप्तिके उपाय बताये गये हैं। **'अणिमा'** (अत्यन्त छोटा हो जाना), **'महिमा'** (विशाल हो जाना), **'लघिमा'** (अत्यन्त हलका हो जाना), **'प्राप्ति'** (अंगुली आदिसे अपने स्थानपर बैठे हुए ही चन्द्रादि आकाशीय एवं अन्य लौकिक वस्तुओंको स्पर्श कर लेना— प्राप्त कर लेना), **'प्राकाम्य'** (इच्छानुसार वस्तुओंको प्राप्त कर लेना), **'ईशिता'** (माया और उसके कार्योंको इच्छानुसार संचालित करना), **'वशिता'** (स्वयं अपने आत्मवशमें रहकर दूसरोंको भी अपने वशमें करना), **'कामावसायिता'** (जिस-जिसकी कामना करे उसकी सीमातक पहुँच जाना)— ये आठ सिद्धियाँ हैं।[१] लिङ्गपुराण पू० अ० ६६ तथा अ० ८८ में भी इनका विस्तृत वर्णन है।

इसके अतिरिक्त **'अनूर्मि'** (शरीरमें भूख-प्यास आदि वेगोंका न होना), **'दूरश्रवणदर्शन'** (बहुत दूरकी वस्तु देख लेना और बहुत दूरकी बात सुन लेना), **'मनोजविता'** (मनके साथ ही शरीरका भी वहाँ पहुँच जाना), **'कामरूपता'** (इच्छानुसार रूप बना लेना), **'परकायप्रवेश'** (दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना), **'स्वच्छन्दमृत्यु'** (इच्छानुसार जीवित रहना तथा शरीर त्यागना), **'सहक्रीडानुदर्शन'** (अप्सराओंके

१- अमरकोश आदिमें 'गरिमा' (भारी हो जाना) को एक सिद्धि-विशेष कहा गया है, किंतु भागवतपुराण आदिमें 'कामावसायिता' आठवीं सिद्धि मानी गयी है।

साथ होनेवाली देवक्रीडाका दर्शन), **'यथासंकल्पसिद्धि,' 'अप्रतिहत-आज्ञा'** (सर्वत्र सबके द्वारा निःसंदेह आज्ञापालन होना), **'अप्रतिहतगति,' 'त्रिकालज्ञान,' 'अद्वन्द्व'** (शीत-उष्ण, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके वशमें न होना), **'परचित्तज्ञान,' 'प्रतिष्टम्भ'** (अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिकी शक्तिको स्तम्भित कर देना) और **'अपराजय'** (किसीसे भी पराजित न होना—) ये सभी सिद्धियाँ योग-धारण करनेसे साधकको प्राप्त होती हैं।

इसी प्रकार स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्डके अठारहवें अध्यायमें महर्षि अगस्त्यके शिष्य महामुनि सुतीक्ष्णको भगवान् श्रीरामकी भक्ति तथा उनके मन्त्रके जपके प्रभावसे अनेक सिद्धियोंकी प्राप्तिका उल्लेख है। वहाँ पूर्वोक्त परिगणित सिद्धियोंके अतिरिक्त **'आकाशगमन', 'कलावैदग्ध्य'** (समस्त कलाओंका ज्ञान), **'अभिज्ञान'** (बिना गुरुके ही सभी शास्त्रोंका ज्ञान), **'अतीन्द्रियार्थदृष्टत्व'** (अतीन्द्रिय—सूक्ष्म वस्तुओंका साक्षात्कार), **'पिपीलिकादिवार्ताज्ञान'** (पिपीलिका आदि सभी प्राणियोंके शब्दों या वार्तालापों अथवा बोलीकी जानकारी), **'लोकान्तरगमन'** (ब्रह्म, विष्णु आदि लोकों और चौदहों भुवनोंमें अबाधगति) आदि सिद्धियोंका उल्लेख है।

स्कन्दपुराण अवन्तीखण्डके सिद्धेश्वर-माहात्म्य (अ० ५९) में सिद्धेश्वर-तीर्थके प्रभावसे **'अञ्जनसिद्धि'** (नेत्रोंमें विशिष्ट अञ्जन लगाकर भूतलके अंदरकी तथा पर्वत, आकाश और समुद्रके भीतरकी वस्तुओंको देखनेकी शक्ति), **'पादलेपसिद्धि'** (किसी विशिष्ट पादलेपके द्वारा आकाशादिमें विचरणकी शक्ति), **'पादुकासिद्धि,' 'गुटिकासिद्धि'** (विशेष प्रकारकी ओषधिकी गुटिकाको मुँहमें रखकर अदृश्य हो जाना तथा फिर यथेच्छ समयपर प्रकट होना), **'खड्गसिद्धि'** (युद्धमें अजेयता प्राप्त करना) (विष्णुधर्मोत्तरपुराण २। १८ तथा अग्निपुराण अ० २६९में खड्गकी उत्पत्ति-कथा, मन्त्र, प्रार्थना तथा खड्ग-सिद्धि-विद्याका विस्तारसे वर्णन है) तथा **'चतुर्विध पुरुषार्थ-सिद्धि'** की प्राप्तिकी बात कही गयी है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेकों सिद्धियों तथा विद्याओं जैसे—**'गारुडीविद्या'** (गरुडपुराण आ० ख० अ० ३), **'त्रैलोक्यविजयविद्या'** (अग्नि० अ० १३४), **'संग्रामविजयविद्या'** (अग्नि० १३७), **'महामारीविद्या'** (अग्नि० १३७), **'त्वरिताविद्या'** (अग्नि० ३१२), **'महापुरुषविद्या,'** (भागवत ११। २७। ३१), **'मधुविद्या'** तथा **'पद्मिनीविद्या'** आदिका उल्लेख पुराणोंमें प्राप्त होता है। साधक अपनी सम्यक् साधनासे इन्हें प्राप्त कर सकता है। इन प्रकरणोंमें अनेकों आख्यान आये हैं। यहाँ विस्तारभयसे उन्हें नहीं दिया जा सका है। पुराणोंमें विद्याएँ अनन्त हैं, शास्त्र अनन्त हैं। ज्ञान निस्सीम है। बिना भगवत्कृपाके विद्याओं तथा शास्त्रोंका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। अतः लौकिक तथा पारलौकिक कल्याणकी कामना और अभ्युदय-निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌की शरणागतिके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। भगवदनुग्रहकी प्राप्ति ही सर्वोपरि है। शास्त्रों तथा विद्या आदिके पठन, श्रवण और मननादिका फल भी ईश्वरप्राप्ति है।

महान् दाता कौन हैं ?

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ९)

(प्रेमास्पदा गोपियाँ कहती हैं—) 'प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-तापको मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल, परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं।'

महाभागवत सुव्रत

सुव्रत बचपनसे ही भगवान् विष्णुमें लीन रहता था। जैसे जलके बिना मछली छटपटाती है, वैसे ही वह विष्णुके स्मरणके बिना छटपटाने लगता था। जब वह गर्भमें था, तभी उसे भगवान्‌के दर्शन प्राप्त हुए थे। उस मनोहारिणी छटामें बच्चेकी आसक्ति हो गयी थी। इतना सौभाग्यशाली था वह सुव्रत।

उसने विद्याका भी अभ्यास किया, अध्यापन भी किया और गानमें भी दक्षता प्राप्त की, किंतु सबमें उसके प्रभु अनुस्यूत दीखते थे। आसक्तिको भला कौन छुड़ा सकता था? उसके मुखसे अपने प्यारे प्रभुके नाम सतत निकलते रहते थे। भगवत्प्रेमका उल्लास उसकी प्रत्येक क्रियामें लक्षित होता था। भगवान्‌के आनन्दमें वह सदा डूबता-उतराता रहता था। इसलिये न उसे कभी भूख लगती थी और न कभी प्यास।

एक बार वह वैडूर्य पर्वतपर विष्णुके ध्यानमें लीन हो गया। सौ वर्ष बीत जानेपर भी इसे कुछ भान न हुआ। तब भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ इसके सामने प्रकट होकर बोले—'वत्स ! ध्यानसे उठो, वर माँग लो।'

सुव्रतकी प्रसन्नताकी सीमा न थी। वह जिन्हें ध्यानमें देखता था, उन्हें प्रकट देखकर फूला न समाया। उसने लम्बी स्तुति की। भगवान् उसे और उसके माता-पिताको अपने लोकमें ले गये।

(पद्मपु० भूमिखण्ड)

सावित्रीका पातिव्रत्य

प्राचीन कालमें मद्रदेश (वर्तमान स्यालकोट जनपद) में शाकलवंशी राजा अश्वपतिकी कन्या सावित्री बड़ी शीलवती, विदुषी एवं रूप-गुणादिसे सम्पन्न थी। समयानुसार वह युवती हुई, तब उसने स्वेच्छासे स्वयं राजा द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्‌को पतिरूपमें वरण कर लिया। इसी बीच देवर्षि नारदने राजा अश्वपतिसे कहा कि 'उस राजकुमार (सत्यवान्) की आयु एक ही वर्षमें समाप्त हो जायगी। नारदजीकी वाणी सुनकर राजाके मनमें यद्यपि चिन्ता तो हुई, पर सावित्रीके हठपर उन्होंने उसका विवाह सत्यवान्‌के साथ कर दिया। सावित्री भी पतिको पाकर आश्रममें नारदजीकी अशुभ वाणीको जानते हुए दुःखित मनसे काल व्यतीत करने लगी। वह वनमें सास-ससुर तथा पतिदेवकी बड़ी शुश्रूषा करती थी, किंतु राजा द्युमत्सेन अपने राज्यसे च्युत होने एवं पत्नीसहित अन्धे होनेके कारण वैसी गुणवती राजपुत्रीको पुत्र-वधूके रूपमें प्राप्त कर संतुष्ट नहीं थे। इधर नारदजीकी बातोंको ध्यानमें रखते हुए और दिनोंको गिनते हुए सावित्री जान गयी कि सत्यवान्‌की आयु अब चार ही दिन शेष है, ऐसा समझकर उस धर्मपरायणा राजपुत्रीने श्वशुरसे आज्ञा लेकर त्रिरात्र-व्रतका अनुष्ठान किया। चौथा दिन आनेपर जब सत्यवान्‌ने लकड़ी, पुष्प [illegible] किया, तब याचना-भंगसे डरती हुई सावित्री भी सास-ससुरकी आज्ञा लेकर दुःखित मनसे उस भयंकर जंगलमें गयी। चित्तमें अतिशय कष्ट रहनेपर भी उसने अपने इस महान् भयको अपने पतिसे व्यक्त नहीं किया, अपितु मन-बहलावके लिये वनमें छोटे-बड़े वृक्षोंके विषयमें पतिसे पूछताछ करती रही। शूरवीर सत्यवान्‌ने उस भयंकर वनमें वृक्षों, पक्षियों एवं भयंकर पशुओंके दलको दिखलाकर थकी हुई एवं कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी सावित्रीको आश्वासन देते हुए कहा—'भामिनि ! मैं फलोंको एकत्र कर चुका तथा तुम पुष्पोंको एकत्र कर चुकी, किंतु अभीतक ईंधनका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, अतः अब मैं उसे एकत्र करूँगा। तबतक तुम इस सरोवरके तटपर वृक्षकी छायामें बैठकर क्षणभर प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करो।'

सावित्री बोली—'कान्त ! जैसा आप कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगी, परंतु आप मेरे नेत्रोंके सामनेसे दूर न जायँ; क्योंकि मैं इस घने वनमें डर रही हूँ।' सावित्रीके ऐसा कहनेपर सत्यवान् उस वनमें राजपुत्रीके सम्मुख ही उस सरोवरसे थोड़ी ही दूरपर काष्ठ एकत्र करने लगे, परंतु राजपुत्री उतनी दूर जानेपर भी उन्हें मरा हुआ-सा मानने [illegible] उत्पन्न

हुई, तब वे पीड़ासे व्याकुल हो पत्नीके पास आकर इस प्रकार कहने लगे—'इस परिश्रमसे मेरे सिरमें बहुत पीड़ा हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अन्धकारमें प्रविष्ट हो रहा हूँ। मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा है। इस समय मैं तुम्हारी गोदमें सिर रखकर सोना चाहता हूँ।' राजपुत्रीसे ऐसा कहकर सत्यवान् उस समय उसकी गोदमें सो गये। जब निद्रावश होकर सत्यवान्के नेत्र मुँद गये, तब उस पतिव्रता राजपुत्री सावित्रीने वहाँ आये हुए सामर्थ्यशाली स्वयं धर्मराजको देखा, जो नीले कमलके-से श्यामवर्णसे सुशोभित और पीताम्बर धारण किये हुए थे। धर्मराजने सत्यवान्के शरीरसे उस समय अँगूठेके परिमाणवाले पुरुषको पाशमें बाँधकर अपने अधीन किया और उसे खींचकर शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया। तब सुन्दरी सावित्री पतिको प्राणरहित देखकर जाते हुए धर्मराजके पीछे-पीछे चली और काँपते हुए हृदयसे अञ्जलि बाँधकर धर्मराजसे बोली— 'स्त्रियोंका पति ही देवता है, पति ही शरण देनेवाला और समस्त सुखोंका दाता है। सुरोत्तम! आप मेरे पतिको जहाँ ले जा रहे हैं, वहीं मुझे भी यथाशक्ति जाना चाहिये। जो स्त्री वैधव्य-धर्मसे दूषित होकर मुहूर्तभर भी जीवन धारण करती है, वह परम भाग्यहीना है।' यह सुनकर यमने कहा—'पतिव्रते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः शुभे! सत्यवान्के प्राणोंको छोड़कर तुम कोई भी वर माँग लो।' सावित्री बोली—'धर्मज्ञ! जो राज्यसे च्युत हो गये हैं और नेत्रहीन हैं, ऐसे मेरे महात्मा श्वशुरको राज्य तथा नेत्रसे संयुक्त कर देनेकी कृपा करें।' यम बोले—'तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी, पर अब तुम लौट जाओ।' सावित्रीने कहा—'देव! आप दण्डके नियामक हैं, इसी कारण आप मुझे सभी देवताओंसे अधिक महत्त्वशाली देवता प्रतीत हो रहे हैं। यह जगत् सत्पुरुषोंके द्वारा धारण किया जाता है तथा आप उन सत्पुरुषोंके अग्रणी हैं। इसलिये देव! आपके पीछे चलते हुए मुझे कुछ भी क्लेश नहीं है।'

धर्मराज बोले—विशालाक्षि! तुम्हारे इन धर्मयुक्त वचनोंसे मैं प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान्के प्राणोंके अतिरिक्त दूसरा वर माँग लो और लौट जाओ, क्योंकि मुझे [illegible] हो रहा है।'

सावित्रीने कहा—'विभो! मैं सौ सहोदर भाइयोंकी अभिलाषिणी हूँ। मेरे पिता पुत्रहीन हैं। अतः वे पुत्र-लाभसे प्रसन्न हों।' यम बोले—'ऐसा ही होगा, परंतु अनिन्दिते! तुम अब लौट जाओ और अपने पतिके और्ध्वदैहिक क्रियाओंके लिये यत्न करो; क्योंकि अब यह दूसरे लोकमें चला गया है। मेरे पीछे आनेसे मेरे कार्यमें विघ्न पड़ता है और तुम्हें कष्ट भी हो रहा है। अतः अब वापस चली जाओ।' सावित्रीने कहा—'देव! मनुष्यको बाल्यावस्थासे ही धर्माचरण करना चाहिये; क्योंकि यह जीवन नश्वर है। यह जानते हुए कि हर मनुष्यकी मृत्यु होगी, फिर भी मनुष्य मृत्युरहितकी भाँति आचरण करता है—यह महान् आश्चर्य है। प्राणधारियोंको इस जगत्में केवल मृत्युसे ही भय नहीं है, अपितु उनके लिये कहीं भी अभयस्थान नहीं है। तथापि पुण्यवान् सत्पुरुष सर्वदा निर्भय होकर संसारमें जीवित रहते हैं।' यमराजने कहा—'कल्याणि! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातोंसे मैं विशेष संतुष्ट हूँ, अतः सत्यवान्के प्राणोंके अतिरिक्त कोई अन्य वर माँग लो और लौट जाओ।' सावित्रीने कहा—'देव! मैं आपसे अपनी कोखसे उत्पन्न होनेवाले सौ पुत्रोंका वरदान माँगती हूँ; क्योंकि लोकोंमें पुत्रहीनकी सद्गति नहीं होती।'

यम बोले—'पुत्री! ऐसा ही होगा, पर अब मेरा अनुगमन न करो और लौट जाओ।' सावित्रीने कहा—'देव! आप धर्मके स्वरूपको जाननेके कारण धर्मराज कहे जाते हैं। पतिके अभावमें मैं किस तरह संतान-सुख प्राप्त कर सकूँगी। अतः अपने वरकी सार्थकताके लिये मुझ दुखियाकी रक्षा करें और मेरे पतिके प्राणोंको छोड़ दें।' यमने कहा—'धर्मज्ञे! तुम्हारी स्तुति एवं भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे पतिके प्राणोंको मुक्त करता हूँ। यह तुम्हारे साथ पाँच सौ वर्षोंतक राज्य-सुख भोगकर अन्तकालमें स्वर्गलोकको प्राप्त होगा। यह तुम्हारे गर्भसे शूरवीर एवं चिरंजीवी सौ पुत्रोंको उत्पन्न करेगा, जिनकी कीर्ति अक्षय होगी। तुम्हारे पिता भी सौ पुत्रोंको जन्म देंगे और वे सभी चिरकालतक जीवित रहकर अक्षय कीर्तिका उपभोग करेंगे। तुम्हारे श्वशुरको नेत्र-सुख एवं अखण्ड राज्यकी प्राप्ति होगी।' ऐसा कहकर महात्मा धर्मराज [illegible] हो गये।

तदनन्तर पतिव्रता सावित्री लौटकर उस स्थानपर आयी जहाँ सत्यवान्‌का मृत-शरीर पड़ा हुआ था। वहाँ वह पूर्वकी भाँति पतिके सिरको अपनी गोदमें लेकर पुनः बैठ गयी। मृत सत्यवान्‌की चेतना भी धीरे-धीरे लौटने लगी। प्राणोंके लौट आनेपर उसने अपनी पत्नी सावित्रीसे कहा—'सुन्दरि! वह पुरुष कहाँ चला गया जो मुझे खींचकर ले जा रहा था। इस वनमें सोते हुए मेरा सम्पूर्ण दिन बीत गया। तुम भी उपवाससे परिश्रान्त एवं दुःखी हुई और मुझ-जैसे दुष्टसे आज माता-पिताको भी कष्ट भोगना पड़ा। मैं उन्हें देखना चाहता हूँ। चलो शीघ्र आश्रममें चलते हैं।' सावित्रीने कहा—'प्रभो! आप आश्रममें चलें, मैं वहीं यह सब घटित हुआ वृत्तान्त आपको बतलाऊँगी।' ऐसा कहकर सावित्री पतिके साथ आश्रमपर आ पहुँची। इसी समय पत्नीसहित राजा द्युमत्सेनको नेत्र-ज्योति प्राप्त हो गयी। सावित्री और सत्यवान्‌ने उन्हें प्रणाम किया। रात्रिमें सावित्रीने सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने श्वशुर एवं अन्य ऋषिजनोंसे निवेदित किया और विधिपूर्वक अपने व्रतका समापन किया। तदनन्तर तीन प्रहर बीत चुकनेके बाद राजा द्युमत्सेनकी सारी प्रजा सेनासहित राजाको पुनः राज्य करनेके लिये निमन्त्रण देने आयी और यह सूचना दी कि राज्यमें आपका शासन पूर्ववत् हो। राजन्! नेत्रहीन होनेके कारण जिस राजाने आपका राज्य छीन लिया था, वह मन्त्रियोंद्वारा मार डाला गया। अब उस नगरमें आप ही राजा हैं। यह सुनकर राजा द्युमत्सेन चतुरंगिणी सेनाके साथ वहाँ गये और महात्मा धर्मराजकी कृपासे पुनः उन्होंने अपने सम्पूर्ण राज्यको प्राप्त किया। सुन्दरी सावित्रीने भी सौ भाइयोंको प्राप्त किया। इस प्रकार साध्वी एवं पतिव्रता राजकुमारी सावित्रीने अपने पितृपक्ष एवं पतिपक्ष—दोनोंका ही उद्धार किया और मृत्युके पाशमें बँधे हुए अपने पतिको मुक्त करा लिया।

इसलिये मनुष्योंको सदा साध्वी स्त्रियोंकी देवताओंके समान पूजा करनी चाहिये; क्योंकि उनकी कृपासे ये तीनों लोक स्थित हैं। उन पतिव्रता स्त्रियोंके वाक्य इस चराचर जगत्‌में कभी भी मिथ्या नहीं होते। इसलिये सभी मनोरथोंकी कामना करनेवालोंको सर्वदा इनकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य सावित्रीके इस सर्वोत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह सभी प्रयोजनोंमें सफलता प्राप्त कर सुखका अनुभव करता है और कभी भी दुःखका भागी नहीं होता। (मत्स्यपु० अ० २०८—२१४)

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र

त्रेतायुगमें हरिश्चन्द्र नामके एक धर्मात्मा राजर्षि थे। एक बार वे मृगयाके समय एक हरिणका पीछा करते हुए वनमें घुसे। वहाँ उन्हें किसी नारीकण्ठसे निकला 'बचाओ-बचाओ'का शब्द सुनायी दिया। राजा भी 'डरो मत, डरो मत' कहकर उधर ही बढ़ चले। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि महर्षि विश्वामित्र विद्याओंको बलात् सिद्ध कर रहे हैं। तब उन्हें रोकते हुए राजाने कहा— भगवन्! आर्त-रक्षण मेरा धर्म है, अतः आप मुझपर क्रोध न करें।' महर्षि विश्वामित्र बोले—'यदि तुम राजा हो और तुम्हें राजधर्मका ध्यान है तो मेरा अभीष्ट दान दो। अपनी पत्नी, पुत्र, अपना शरीर तथा धर्म छोड़कर मुझे समुद्रसे चतुर्दिक् घिरी यह समस्त पृथ्वी, कोषागार तथा सम्पूर्ण राज्य—यह सब दानमें मिलना चाहिये।

निर्विकार हृदयवाले राजा हरिश्चन्द्रने बड़े प्रसन्न-मनसे महर्षि विश्वामित्रकी बात सुनी और हाथ जोड़कर 'दे दिया'—ऐसा कह दिया। तब विश्वामित्रने कहा—'राजन्! यदि तुमने सारी पृथ्वी मुझे दानमें दे दी, तब जहाँ-जहाँ मेरा स्वामित्व है, वहाँ-वहाँसे तुम्हें बाहर निकल जाना चाहिये। तुम्हें अपने तथा अपनी पत्नी और पुत्रके स्वर्णमेखला आदि आभूषणोंके साथ अन्य सभी अलंकार-भण्डार यहीं छोड़कर, वल्कल वस्त्र धारण कर पत्नी और पुत्रको साथ ले मेरे राज्यको छोड़ देना चाहिये।' राजाने 'ऐसा ही करूँगा' कहकर वैसा ही किया। वे अपनी पत्नी शैव्या तथा अपने बालक पुत्रके साथ राज्यसे निकल पड़े। उन सबको जाते देखकर विश्वामित्र मुनिने राजासे कहा कि 'मुझे राजसूय-यज्ञकी दक्षिणा दिये बिना तुम कहाँ जा रहे हो?'

हरिश्चन्द्र बोले—'भगवन्! इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। मैं कुछ समय बाद दे दूँगा। ब्रह्मर्षिवर! तबतक आप कृपा करें। मैं बिना छल-कपटके यह सब कह रहा हूँ।' ऋषि बोले—'राजन्! कबतक मुझे तुम्हारे दिये वचनके पालनकी

प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ? जल्दी बोलो, नहीं तो मेरी शापाग्नि तुम्हें जलाकर राख कर देगी।' हरिश्चन्द्रने कहा—'ब्रह्मर्षे ! एक महीनेमें मैं आपको दक्षिणाका धन दे दूँगा। इस समय मेरे पास कोई धन नहीं है। आप मुझे जानेकी आज्ञा दें।'

विश्वामित्रने कहा—'राजन् ! जाओ, किंतु अपने धर्मका पालन करो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो, उसमें कोई विघ्न-बाधा न पड़े।' मुनिकी आज्ञा पाकर राजा हरिश्चन्द्र चल पड़े और उनकी प्यारी पत्नी भी, जिसे कभी पैदल नहीं चलना पड़ा था, उनके पीछे-पीछे चलने लगीं। अपनी पत्नी और अपने पुत्रके साथ राजधानी छोड़कर जानेवाले अपने राजाको देखकर जितने भी नगरवासी और अनुचर-परिचर थे, सब रोने लगे। वे चीत्कार करते हुए कहने लगे—'राजन् ! आप धर्मपरायण और प्रजाजनपर दयालु होकर भी हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? हम आपके वियोगसे सदाके लिये दीन-दुःखी हो जायँगे। महाराज ! आप हमें क्यों छोड़ रहे हैं ? जहाँ आप हैं, वहाँ हम रहेंगे। जहाँ आप रहेंगे, वहाँ हमारे सब सुख रहेंगे। जहाँ आप होंगे, वहीं हमारा नगर होगा। जहाँ हमारे राजा रहेंगे, वहीं स्वर्ग बसेगा।' राजाने जब अपने पौरवर्गकी ये बातें सुनीं तो वे बड़े शोकाकुल हो गये और उनपर दयालु होनेके कारण मार्गमें रुक गये।

इतनेमें विश्वामित्र मुनि पुनः वहाँ पहुँच गये और क्रोधसे आँखें तरेरकर राजासे बोले—'धिक्कार है, दुष्टाचारी, असत्यवादी और कुटिलभाषी तुम्हें। तुमने मुझे दानमें जो राज्य दिया था, उसे अब तुम छीन लेना चाहते हो ?' इस प्रकारकी कठोर बात सुनकर राजा 'जा रहा हूँ'—यह कहते एवं काँपते हुए हाथसे पत्नीको पकड़कर खींचते हुए वहाँसे चल पड़े। जब वे अपनी थकी-माँदी, सुकुमारी पत्नीको खींचते हुए चलने लगे तो कौशिक विश्वामित्र मुनिने डंडेसे उनकी पत्नीको पीटा। यह देखकर महाराज हरिश्चन्द्र दुःखार्त होकर केवल यही बोले कि 'जा रहा हूँ' और कुछ नहीं कह सके।

राजा हरिश्चन्द्र बड़े दुःखी हुए और धीरे-धीरे वाराणसीकी ओर चल पड़े। उनके पीछे अपने बालक पुत्रके साथ शैव्या भी चलीं। ज्यों ही वे वाराणसीपुरीमें प्रविष्ट हुए, त्यों ही उन्होंने वहाँ विश्वामित्र मुनिको देखा। उन्हें देखकर राजाने कहा—'मुनिराज ! मेरा प्राण, पुत्र, पत्नी—इनमेंसे आपको जिससे भी काम बने, उसे आप यथोचित अर्घ्यके रूपमें ले लें।' विश्वामित्रने कहा—'राजर्षे ! वह महीना समाप्त हो रहा है, जिसमें तुम्हें मेरे राजसूय-यज्ञके लिये दक्षिणा देनी थी। सम्भवतः तुम्हें अपना दिया वचन स्मरण होगा।' हरिश्चन्द्र बोले— 'महातेजस्वी तपोधन ब्रह्मर्षे ! आजके ही दिन वह महीना समाप्त होनेवाला है, किंतु अभी आधा दिन बचा है, इसलिये अधिक नहीं, तबतकके लिये ही आप प्रतीक्षा करें।' जैसी तुम्हारी इच्छा, मैं फिर आऊँगा और आज यदि तुमने दक्षिणा न दी तो तुम्हें शाप दे दूँगा।' यों कहकर महर्षि विश्वामित्र चले गये।

तब पत्नी शैव्याने राजाको व्याकुल, दीन, मुख लटकाये चिन्तामग्न देखकर रुँधे गलेसे कहा—'महाराज ! चिन्ता छोड़िये और अपने सत्यवचनका पालन कीजिये; क्योंकि जो मनुष्य सत्यवचनसे डिग जाता है, उससे लोग श्मशानकी भाँति कतराते रहते हैं। राजन् ! सत्पुरुषोंके लिये विवाहका फल पुत्र ही होता है और पुत्र आपको प्राप्त हो चुका है, इसलिये मुझे किसीके हाथ सौंपकर जो धन मिले उसे ब्राह्मणकी दक्षिणाके रूपमें दे दीजिये।'

यह बात सुनते ही राजा मूर्च्छित हो गये। जब उनकी मूर्च्छा टूटी, तब वे अत्यन्त दुःखी होकर रोते हुए कहने लगे—'प्रिये ! कितने कष्टकी बात है, जो तुम ऐसा कह रही हो। क्या मैं इतना पापी हूँ कि तुम्हारी हँस-हँसकर की गयी बातें भूल गया हूँ। अरी निश्छल हँसीवाली ! तुम्हारे मुखसे ऐसी बात कैसे निकली ? यह बड़ी बुरी बात है। मैं भला इसे कैसे कार्यरूपमें परिणत कर सकता हूँ ?' इतना कहकर राजा अपनेको धिक्कारने लगे और उसी अवस्थामें मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। राजाको पृथ्वीपर पड़े देखकर राजपत्नी शैव्या बड़ी दुःखित हुईं और करुणाभरी बात बोलीं—'किसके दुश्चिन्तनसे आपकी यह दशा हो गयी महाराज ! जिसके कारण राजमहलमें दिव्य पर्यङ्कपर सोनेके अभ्यस्त आप पृथ्वीपर पड़े हैं ? हे भगवन् ! मेरे जिस पतिने ब्राह्मणोंको करोड़ोंकी संख्यासे भी अधिक गोदान किया और धन दान किया है, वे ही आज पृथ्वीपर पड़े हैं। हा दैव ! हमारे राजाने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जिसके कारण इन्द्र और उपेन्द्र-सरीखे इन्हें तुमने मूर्च्छित कर पृथ्वीपर पटक दिया है।' इतना कहकर पत्नी भी,

जो अपने पतिपर पड़े असह्य महादुःखके महाभारसे पीड़ित थीं, मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। उनका बालक भी अनाथकी भाँति बड़ा दुःखी हुआ और भूखसे पीड़ित हो बोल उठा— 'पिताजी ! पिताजी ! कुछ खानेको दो। कुछ खिला दो माँ ! मुझे बड़े जोरकी भूख लगी है और मेरी जीभ सूख रही है।'

इसी बीच महर्षि विश्वामित्र वहाँ पहुँच गये और हरिश्चन्द्रको पृथ्वीपर मूर्च्छित पड़ा देखकर उनपर पानीका छींटा देकर बोले—'राजन् ! उठो, जल्दी उठो और मेरी वह अभीष्ट दक्षिणा लाओ।' जिसपर कोई ऋण है, उसका दुःख दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। जब ठंडे पानीके छींटोंसे राजाकी चेतना लौटी और उन्होंने मुनि विश्वामित्रको देखा तो वे फिर मूर्च्छित हो गये। उन्हें मूर्च्छित देख विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये और बोले— 'आज यदि तुम मेरी दक्षिणा नहीं दोगे तो सूर्यास्त होते ही मैं तुम्हें अवश्य शाप दे दूँगा।' यह कहकर विप्रवर विश्वामित्र चले गये और राजा भयविह्वल हो गये। इसके बाद राजा नगरकी ओर चले। उनका गला आँसुओंसे रुँधा था। ऐसी दशामें ही वे बोलने लगे—'नागरिकगण ! आप सब लोग मेरी बात सुनें। क्या आपलोग जानना चाहेंगे कि मैं कौन हूँ ? मैं एक महाक्रूर अधम व्यक्ति हूँ। आप मुझे एक महानृशंस राक्षस समझिये या उससे भी अधिक, जो अपने प्राण देनेके बदले अपनी प्यारी पत्नीको बेचने आया है। यदि आपलोगोंमेंसे कोई मेरी प्राणप्यारी पत्नीको दासीरूपमें रखनेको तैयार हो, तो वह शीघ्र बोले जबतक मैं जीवित हूँ।' इसके बाद एक बूढ़ा ब्राह्मण आगे आया और राजासे बोला—'मुझे दासी चाहिये, मैं खरीदूँगा और तुम्हें मुँहमाँगा मूल्य दूँगा। मेरे पास बहुत धन है। मेरी पत्नी सुकुमारी है और घरका काम नहीं कर सकती। इसलिये अपनी पत्नीको मुझे दे दो।'

उस ब्राह्मणने राजा हरिश्चन्द्रसे जब ऐसा कहा तब उनका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया और वे कुछ बोल न सके। उसके बाद ब्राह्मणने राजाके वल्कल वस्त्रकी छोरमें वह धन कसकर बाँध दिया और राजरानीके बाल पकड़कर खींचते हुए ले जाने लगा। अपनी माँको उस ब्राह्मणके द्वारा घसीटा जाता देखकर रोहिताश्व जो बच्चा था और जिसके सिरपर काकपक्ष-सरीखे बाल थे, अपने हाथोंसे माँका आँचल पकड़कर रोने लगा। तब शैव्याने कहा—'स्वामिन् ! मुझपर दया कीजिये, इस बालकको भी खरीद लीजिये। आपने मुझे खरीद लिया है, किंतु बिना इसके मैं आपका काम नहीं कर सकूँगी। मुझ अभागिनपर आप कृपा करें और मुझे अपने बच्चेसे उसी प्रकार मिला दें, जैसे बछड़ेको दूध पिलानेवाली गायसे मिलाया जाता है।' 'लो यह धन और अपने बच्चेको भी मुझे दे दो।' ऐसा कहकर उस ब्राह्मणने वह धन भी राजाके उत्तरीयके छोरमें बाँध दिया और बच्चेको पकड़कर उसकी माँके साथ कर दिया।

राजाने जब अपनी पत्नी और अपने पुत्रको उस दशामें ले जाते देखा तो वे अत्यन्त दुःखविह्वल होकर बार-बार निःश्वास लेने लगे और बोले—'जिस मेरी धर्मपत्नीको पहले न पवन देवता देख सके, न सूर्य और न चन्द्रमाने ही देखा, साधारण लोगोंके देखनेकी बात तो दूर रही, वही अब दासी बन गयी है।' राजा इस प्रकार विलाप करते रहे और वह ब्राह्मण उन दोनोंको साथ लेकर चला गया।

इतनेमें ही मुनि विश्वामित्र वहाँ पहुँच गये और राजासे अपनी दक्षिणा माँगने लगे। हरिश्चन्द्रने वह सब धन उन्हें दे डाला। पत्नी और पुत्रके बेचनेसे मिले उस धनको बहुत थोड़ा देखकर विश्वामित्र मुनिने शोकाकुल राजासे क्रोधमें कहा—'नीच राजपुत्र ! यदि तुम इस धनको मेरे योग्य यज्ञदक्षिणा समझते हो तो अभी तुम्हें मेरे असीम बलका पता लग जायगा।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन् ! मैं और दक्षिणा दूँगा, कुछ समय और रुकें। पत्नी और पुत्रको तो मैं बेच चुका। अब मेरे पास कुछ नहीं है।' 'दिनका चतुर्थांश बच रहा है। मैं तबतक ही प्रतीक्षा करूँगा। उसके बाद तुम मुझसे कुछ न कहना।' राजासे ऐसी निष्ठुर और निर्दय बात कहकर उस धनको साथ ले क्रुद्ध कौशिक विश्वामित्र अविलम्ब वहाँसे चल दिये। उनके चले जानेपर राजा भय और शोकके समुद्रमें डूबने-उतराने लगे। वे मुख नीचा किये जोर-जोरसे बोलने लगे—'धनसे खरीदकर जो भी व्यक्ति मुझे अपना दास रख सके, वह सूर्यके अस्त होनेके पहले ही तुरंत बोल दे।'

तदनन्तर चाण्डालरूपधारी धर्म वहाँ त्वरितगतिसे आ पहुँचा। वह दुर्गन्धसे भरा, विकृत, कठोर, दाढ़ी बढ़ाये, बड़े-बड़े दाँत दिखाते, घृणाका पात्र, काला-कलूटा, लम्बोदर, पीली आँखोंवाला, दयाहीन, कटुभाषी, बहुतसे पक्षियोंको

पकड़े नरमुण्डोंकी माला पहने, हाथमें खोपड़ी लिये, लम्बे लटके मुखवाला, भैरव-सरीखा, बकझक करता, कुत्तोंसे घिरा, भयंकर रूपवाला, हाथमें लाठी लिये इस प्रकार बोला—'मुझे दासकी आवश्यकता है। शीघ्र ही अपना मूल्य बता—चाहे थोड़ा हो या अधिक, मैं उसे देकर तुझे खरीद लूँगा।'

राजाने पूछा—'तुम कौन हो?' उसने कहा—'यहाँ लोग मुझे चाण्डाल कहते हैं। नगरमें मैं प्रवीरके नामसे विख्यात हूँ। जो वध्य होते हैं, उनका मैं वधिक हूँ और जो मर जाते हैं, उनका मैं कफन उतार लेता हूँ।' राजाने कहा—'मैं अत्यन्त गर्हित चाण्डालकी दासता नहीं चाहता। इससे तो अच्छा है कि मैं मुनिकी शापाग्निमें जलकर मर जाऊँ।'

इतनेमें मुनि विश्वामित्र वहाँ आ गये। उन्होंने कहा—'यह तुम्हें बहुत-सा धन देने यहाँ आया है। फिर तुम मुझे मेरी पूरी यज्ञ-दक्षिणा क्यों नहीं देते?' राजाने कहा—'मुनिवर! मैं सूर्यवंशी हूँ। धनकी कामनासे भला, मैं अपनेको चाण्डालका दास कैसे बना दूँ?' मुनिने कहा—'यदि अपने विक्रयसे मिले चाण्डालका धन तुम मुझे नहीं देते हो तो निश्चय ही मैं निर्धारित समयपर तुम्हें शाप दे दूँगा।' इसके बाद राजा हरिश्चन्द्र बोले—'कृपा करें, कृपा करें, मैं आपका वशंवद दास बन जाऊँगा।' विश्वामित्रने कहा—'यदि तुम मेरे दास हो तो मैं उसी चाण्डालके हाथ तुम्हें उसके दासके रूपमें एक अरबके मूल्यका धन लेकर सौंप देता हूँ।' तब वह चाण्डाल राजा हरिश्चन्द्रको बाँधकर अपने आवासस्थानपर ले गया।

अपना सर्वस्व खोकर दीन-हीन राजा चाण्डालोंकी बस्तीमें रहते हुए अपने प्यारे पुत्र और अपनी प्राणप्यारी पत्नीकी याद करते रहे। कुछ समय बाद चाण्डालके वशवर्ती बने राजा हरिश्चन्द्र श्मशानमें मुर्दोंके कपड़े उतारनेके काममें लग गये। चाण्डालने उन्हें यों आदेश दिया—'प्रत्येक मुर्देसे मिले धनका एक भाग तो राजाको देना है और तीन भाग मेरा होता है, उनमेंसे दो भाग अपने वेतनके रूपमें तुम ले सकते हो।' ऐसी आज्ञा पाकर राजा हरिश्चन्द्र वाराणसीमें जो दक्षिण दिशाकी ओर श्मशान था, वहाँ चले गये।

इस प्रकार राजाके बारह महीने सैकड़ों वर्षकी भाँति बड़े कष्टसे बीते। एक समय महाराज अपने प्रियजनोंके वियोगसे व्यथित और थकित थे। इस कारण वे निद्राभिभूत हो गये, उनका शरीर रूखा-सूखा तो हो ही गया था, वे बिलकुल निश्चेष्ट होकर सो गये। इसी बीच उनकी धर्मपत्नी साँपके काटनेसे मरे अपने पुत्रको लेकर विलाप करती हुई वहाँ आ पहुँचीं। वे 'हाय बेटे! हाय बच्चे! हाय मेरे लाल!' यही बार-बार बोलती थीं, उनका शरीर दुर्बल हो गया था, उनके चेहरेका रंग उड़ गया था, वे अन्यमनस्क-सी हो रही थीं और धूलमें सिर पटकनेसे उनके केश-कलाप धूसर हो गये थे।

बहुत रोती-विलखती अपनी धर्मपत्नीको राजा पहचान न सके, क्योंकि वे चिर प्रवाससे संतप्त थीं और ऐसी लगती थीं मानो पुनर्जन्म लेनेवाली कोई और बला हो। राजरानी भी अपने पतिको, जिनके सुन्दर केशकलापसे वे परिचित थीं, पहचान न सकीं। राजा साँपके द्वारा काटे जानेसे मरे और काले कपड़ेसे ढँके बच्चेको देखकर और यह जानकर कि इसके लक्षण तो राजाके समान हैं, बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वे सोचने लगे कि कितने कष्टकी बात है कि किसी राजवंशका अवतंस यह शिशु दुष्ट कृतान्तके द्वारा कैसी दुर्दशामें डाल दिया गया है।

इसी समय राजपत्नी बोल उठीं—'हा विधाता! राजर्षि हरिश्चन्द्रका तुमने कौन-सा अनर्थ नहीं किया—राज्यका नाश किया, बन्धु-बान्धवोंका सङ्ग छुड़वाया और इतना ही नहीं, उनकी पत्नी और उनके पुत्रका विक्रयतक करवा दिया।' उनकी इन बातोंको सुनकर राजा उनके निकट आये और उन्होंने अपनी प्रियतमा पत्नीको पहचाना और पुत्रकी मृत्युका भी समाचार जाना। 'कितने कष्टकी बात है कि यह नारी तो शैव्या ही है और यह बालक भी उसीका है।'—ऐसा कहते हुए दुःखसे पीड़ित राजा रोने लगे और मूर्च्छित हो गये। शैव्या भी उन्हें पहचानकर और वैसी दुर्दशामें पड़े देखकर विलाप करती हुई मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। जब राजा और राजरानी दोनोंकी चेतना लौटी, तब शोकके महाभारसे पीड़ित एवं संतप्त-हृदय वे दोनों एक साथ मिलकर विलाप करने लगे।

राजाने बच्चेको गोदमें उठा लिया और बार-बार छातीसे लगाया। उनका गला आँसुओंसे रुँध गया और वे निश्चेष्ट

होकर पुनः मूर्च्छित हो गये। अत्यधिक आश्चर्यमें पड़ी, दीन-हीन, पति और पुत्रके शोकसे पीड़ित रानीने अपने पतिको देखा और उनके पास एक घृणास्पद डंडेको भी देखा, जो चाण्डालोंका डंडा था। उसे देखते ही सुन्दरी शैव्या मूर्च्छित हो गयीं। तत्पश्चात् चेतना लौटनेपर वे रुँधे गलेसे बोलीं—'अरे विधाता! धिक्कार है तुझे! तू इतना निष्ठुर, इतना उद्दण्ड और इतना घृणित है कि तूने देवतुल्य राजाको चाण्डाल बना दिया।' राजाने कहा—'प्रिये! अब अधिक दिनोंतक क्लेश सहन करना असम्भव लग रहा है, किंतु विवश हूँ, क्योंकि पराधीन हूँ। यह सब मेरा दुर्भाग्य है जो तुम देख रही हो। यदि मैं अपने स्वामी चाण्डालकी आज्ञाके बिना आगमें जल मरता हूँ तो अगले जन्ममें मुझे उसी चाण्डालकी दासता भोगनी पड़ेगी। वैतरणीमें भी वह दुःख कहाँ, जो पुत्रपर पड़े प्राण-संकटमें है। इसलिये मैं प्रज्ज्वलित चितामें अपने पुत्रके शरीरके साथ कूद पड़ूँगा।' यह सुनकर राजपत्नी बोलीं—'राजर्षे! अब मैं भी दुःखोंका भार नहीं सह सकती, मेरा भी निश्चय है कि आज ही आपके साथ जलती चितामें कूदकर जल मरूँ।

तदनन्तर राजाने चिता बनायी और उसपर अपने पुत्रको रखा, फिर वे अपनी पत्नीके साथ हाथ जोड़कर उन श्रीनारायणका स्मरण करने लगे, जो परमात्मा, परमेश्वर, श्रीहरि, हृद्गुहामें विराजमान, वासुदेव, देवोंके भी देव, अनादिनिधन, श्रीकृष्ण, पीताम्बरधारी और वस्तुतः ब्रह्म हैं।

ज्यों ही राजा श्रीनारायणके ध्यानमें मग्न हुए, त्यों ही देवराज इन्द्रसमेत सभी देवगण धर्मको अग्रणी बनाकर त्वरितगतिसे वहाँ आ पहुँचे और बोले—'राजन्! सुनो, यह देखो, ये साक्षात् ब्रह्मा खड़े हैं और स्वयं भगवान् धर्म भी उपस्थित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक देवगण उपस्थित हैं। साथ ही विश्वामित्र भी विराजमान हैं, जिन्हें अबतक तीनों लोकके निवासी अपना मित्र न बना सके।'

धर्मने कहा—'राजन्! ऐसा दुःसाहस न करो। मैं धर्म हूँ और तुम्हारे आगे साक्षात् उपस्थित हूँ। तुम्हारी तितिक्षा, इन्द्रियदमनशक्ति और सत्यवादिता आदिसे मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ।'

इन्द्रने कहा—'भाग्यशाली महाराज हरिश्चन्द्र! मैं देवराज इन्द्र तुम्हारे पास आया हूँ। अपनी पत्नी और अपने पुत्रके साथ तुमने सभी शाश्वत लोकोंपर विजय पायी है। अब तुम पत्नी और पुत्रके साथ उस स्वर्गलोकमें चलो, जिसे तुमने अपने धर्मसे अर्जित किया है और जहाँ सर्वसाधारणके लिये जाना दुष्कर है। इसी बीच आकाशसे देववृन्दने पुष्पवृष्टि की और उनके आनन्दसूचक दुन्दुभिनाद होने लगे। वहाँ उपस्थित समस्त देवसमाज एक विचित्र उत्सुकतासे भर उठा।

उसके बाद ही महात्मा राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र उठ खड़ा हुआ। सुकुमार शरीर, स्वस्थ, प्रसन्नेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त अपने पुत्रका राजा हरिश्चन्द्रने तत्क्षण आलिङ्गन किया। उनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ हो गयीं। वे श्रीसम्पन्न लगने लगे और उन्होंने दिव्य माल्य तथा दिव्य वस्त्र धारण कर लिया।

राजाने कहा—'देवराज! अपने स्वामी चाण्डालकी आज्ञाके बिना जबतक उनका सारा ऋण न चुका दूँ, तबतक मैं देवलोकका आरोहण कदापि नहीं कर सकता।' तब धर्म बोले—'राजन्! तुम्हें जो भी क्लेश हुए हैं, वे सब मेरे ही कारण हुए हैं। मैंने ही अपनी मायासे चाण्डालका रूप धारण किया था और विकृत चेष्टाएँ प्रदर्शित की थीं।'

राजाने कहा—'देवराज! कोसलराज्यके अपने प्रजाजनको, जो मेरे शोकमें निमग्न हैं, यों ही छोड़कर मैं स्वर्गलोक कैसे जा सकता हूँ, अतः आप उन्हें भी जानेकी अनुमति दें।'

देवराज इन्द्रने सबको ले जानेकी आज्ञा दे दी। बादमें विश्वामित्र रोहिताश्वको अयोध्या ले आये और देवगण, मुनिजन तथा सिद्धवृन्दके साथ उन्होंने उसका अयोध्याकी रम्य राजधानीमें राज्याभिषेक कर दिया। उधर राजा हरिश्चन्द्रके साथ सभी अयोध्यावासी प्रजाजनोंने अपने पुत्रों, भृत्यों और अपनी धर्मपत्नियोंके साथ स्वर्गारोहण किया। (मार्क० अ० ७-८)

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः। हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥

'भगवान् श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले हैं। वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें स्थित होकर उनकी अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे संतोंके नित्य सुहृद् हैं।' (श्रीमद्भा० १।२।१७)

आदिपुराण

बृहद्धर्मपुराणके पूर्वखण्डके अध्याय पचीसमें अठारह उपपुराणोंकी गणना हुई है। उसमें सर्वप्रथम उल्लेख आदिपुराणका **ही हुआ है। इसके बाद सूर्यपुराण**, नन्दीपुराण, कालिकापुराण आदिका विवरण मिलता है। बृहत् संस्कृत ग्रन्थ-सूची *(New Catalogus Catalogrum)* भाग २, पृष्ठ ८३ से ८८ तकके पृष्ठोंमें २५ आदिपुराणोंके विवरण निर्दिष्ट हैं, किंतु उपेक्षाके **कारण यह पुराण विशेष दुर्दशाग्रस्त** हो गया। यह पुराण पहले कितना समादृत था, इसका अनुमान मनुस्मृतिके केवल एक **ही श्लोक** (२। ५४) की टीकामें कुल्लूक भट्ट, गोविन्दराज आदि अनेकों विद्वानोंद्वारा प्रमाणरूपमें इसी पुराणके दो स्थानोंसे **दो वचनोंको उद्धृत करनेसे स्पष्ट** होता है[1]।

रूप, सनातन आदि गोस्वामी बन्धुओंने गोपालचम्पू आदि विविध निबन्ध-ग्रन्थोंमें आदिपुराणके अनेकों वचनोंको बार-बार उद्धृत किया है। प्रतिष्ठातन्त्र, कृष्णकवच, विष्णुनाम-माहात्म्य, वृन्दावन-माहात्म्य आदि अनेक प्रकरण-ग्रन्थ इसी पुराणसे लिये गये हैं और वे सभी अपनेको इसी पुराणका अंश स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, अपितु इस पुराणके श्लोक नीलाम्बरकृत **'कालकौमुदी'**, माधवाचार्यके 'पाराशर-माधव', हारीतवेङ्कटाचार्यके 'स्मृतिरत्नाकर', हेमाद्रिके 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' एवं 'शक्ति-रत्नाकर' आदिमें भी उद्धृत हैं। कल्हणकृत राजतरंगिणीके अंग्रेजी अनुवादकर्ता एवं सम्पादक श्री एम्० ए० स्टेन महोदयने जम्मू-कश्मीर-राज्यके रघुनाथ-मन्दिरके पुस्तकालयमें स्थित आदिपुराणकी एक ऐसी हस्तलिखित प्रतिका उल्लेख किया है, जिसमें पूर्वार्ध तथा उत्तरार्धमें ५२-५२ अध्यायके क्रमसे १०४ अध्याय हैं। वर्तमानमें वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० १९६४ के आदिपुराण-पूर्वार्धकी अपूर्ण प्रति ही प्रकाशित रूपमें उपलब्ध है, जिसमें कुल २९ अध्याय ही हैं, उसीके आधारपर इस पुराणका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

इस आदि-उपपुराणमें मुख्यतया श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन है। इसपर विष्णुपुराण और भागवतपुराणका विशेष प्रभाव दीखता है। इसमें जहाँ-तहाँ कई श्लोक ज्यों-के-त्यों प्राप्त होते हैं। आदिपुराण अपना परिचय अपने प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें 'सकल पुराणोंका सारभूत' कहकर देता है। इससे यह सम्भावना होती है कि 'आदिपुराण'के रचयिताके समक्ष सभी पुराण, उपपुराण एवं अन्य शास्त्र भी उपस्थित थे अथवा उन्होंने सभी पुराणोंके बीज या मूल स्रोतरूपमें इसका प्रारम्भमें निर्माण किया। इसके प्रथम अध्यायके १२वें श्लोकमें ब्रह्मसूत्रका भी उल्लेख मिलता है। इसमें सूत-शौनकके अतिरिक्त आरम्भमें ही गृत्समद, वात्स्यायन, स्थूलशिरा, जाबालि, जातूकर्णि, उष्मप आदि ऋषियोंके संवादमें हरिलीलामृतकी अपार महिमाका वर्णन है। तदनन्तर श्रीसूतजी इन मुनिजनोंसे कहते हैं—'मुनिवरो! एक बार भी श्रद्धा या अश्रद्धापूर्वक अतीव मधुर, मङ्गलोंका भी मङ्गलकारक, सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों एवं पुराणोंका सच्चिदानन्दस्वरूप सत्फल 'कृष्ण' नाम उच्चारित किये जानेपर प्राणिमात्रको तार देता है—

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा मुनिवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥ (आदिपुराण ४। २२)

इसके पाँचवें अध्यायके प्रारम्भमें व्यासजी इस पुराणको सनत्कुमारजीके द्वारा कथित कहते हैं। आदिपुराणके छठे अध्यायसे श्रीकृष्ण-चरित्र प्रारम्भ होता है, जो भागवतके दशम स्कन्धमें आनुपूर्वीसे प्रोक्त है। इसमें वसुदेव-देवकीके विवाहके पश्चात् कंसका उन्हें पहुँचानेके लिये जाने, मार्गमें आकाशवाणी सुनकर उन्हें जेलमें डालने, फिर उनके छः पुत्रोंकी हत्या करने, सातवें-आठवें बालकके रूपमें बलराम तथा कृष्णके आने, वसुदेवजीका उन्हें व्रजमें पहुँचाने और पूतना, अघासुर, वकासुर, तृणावर्त आदिके वधकी कथाएँ भी वर्णित हैं।

१-अत्रं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ प्राञ्जलिः कथयेत्ततः। अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भक्त्या स्तुवन्नमेत्॥
प्राणार्थं मां सदा ध्यायेत् स मां सम्पूजयेत् सदा। अनिन्दंश्चैतदद्यात् ... [illegible]

कथाके माध्यमसे बीच-बीचमें इसमें ज्ञान और भक्तिके बड़े सुन्दर प्रसङ्गोंका संयोजन हुआ है। पाञ्चरात्र आगमोंके सारसर्वस्वभूत व्यूह-चतुष्टय (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) के भारतमें अवतीर्ण होनेकी कथा इसमें अध्याय छः के बाद बड़े सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित की गयी है। इसके नवें अध्यायमें कृष्ण-दर्शनकी लालसासे अनिरुद्धजीके निर्देशानुसार नारदजीके मानसरोवर पहुँचनेकी बात आती है—'वे वहाँ पहुँचते हैं तथा उसमें स्नान करते ही गोप-कन्या बन जाते हैं। उन्हें अपने नारदत्वकी पूर्ण विस्मृति हो जाती है। वहाँ यमुनाको देखकर कन्यावेशी नारद पूछते हैं—'तुम कौन हो और यहाँ क्या कर रही हो ? इसपर यमुना कहती हैं कि वृन्दावनमें सर्वाङ्गसुन्दर श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए हैं। वहीं वे राधा आदि गोपियोंके साथ लताकुञ्जोंमें क्रीडा करते हैं।' यह सुनकर नारदजी स्त्रीरूपमें ही कृष्णसे मिलनेके लिये वृन्दावन आते हैं और गोपबालाओंद्वारा कृष्णसे मिलते हैं। वहाँ अधिक समयतक निवास कर श्रीकृष्णकी कृपासे वे पुनः अपने पूर्वरूपको प्राप्त हो ब्रह्मलोक जाते हैं और वहाँ पहुँचकर सम्पूर्ण वृत्तान्त ब्रह्माजीसे निवेदित करते हैं।'

आदिपुराणके अध्याय ११ और १२में वृन्दावनकी तीन करोड़ गोपियोंमेंसे रागरंगा, ललिता, चन्द्रविन्दा, मंजुकेशी, चित्रा, इन्द्रलेखा आदि प्रायः पाँच सौसे भी अधिक गोपियोंका नामोल्लेख मिलता है और उनकी राधाकृष्णके प्रति निःस्वार्थ समर्पणयुक्त भक्ति-भावनाका चित्रण है। इसके सोलहवें अध्यायमें स्वयं श्रीकृष्णने अपने पूर्व-अवतार रामकी रामायण-कथा विस्तारपूर्वक गोपोंसे कही है। इसे सौ श्लोकोंका 'रामायण-सार' कहा जा सकता है। इसके अनन्तर २९वें अध्यायतक पुनः श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन है, इसमें उनके जन्म-प्रसंगसे लेकर बाल-लीलाओंका वर्णन करते हुए गोपियोंके घरोंमें माखन-चोरी, मृद्भक्षण और अपने मुखमें ब्रह्माण्डका प्रदर्शन, पुनः दधिभाण्डभङ्ग, माताद्वारा उलूखल-बन्धन तथा वृक्षरूपमें स्थित यमलार्जुनके उद्धारपूर्वक नलकूबरकी सद्‌गति-प्रदानका वर्णन है। आदिपुराणकी कथाएँ अत्यन्त रमणीय हैं और इनके मननद्वारा लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों ही दृष्टियोंसे चरम लक्ष्यकी सिद्धि सम्भव है।

कथा-आख्यान—

पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ?

भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके दस दिनके पश्चात् कंसने वकासुरकी बहन पूतनाको बालकोंका छल-बलके द्वारा वध करते हुए कृष्णको मारनेके लिये जब जानेको कहा, तब पूतनाने कहा कि 'मैंने स्वप्नमें स्तन-स्थलपर घोर पीड़ा होने तथा प्रेतोंके द्वारा आलिङ्गित होने आदिका बुरा स्वप्न देखा है, इसलिये हमारा भविष्य घोर भयप्रद प्रतीत होता है।' कंसने कहा—'भयकी कोई बात नहीं है और फिर बालकोंसे तो तुम्हें डरनेकी कोई बात ही नहीं है। तुम तो मेरी चौथी राक्षसी पत्नी कैतवीकी पुत्री हो, तुम स्वयं संसारके लिये भयंकर हो। तुम व्रजमें जाओ।' पूतनाने कहा—'मेरी बहन वृकोदरी है, मैं उससे मिलकर जाऊँगी, जो होना होगा वह टलेगा नहीं।' पूतनाने जब अपनी बहनसे स्वप्नकी बात बतलायी, तब उसने कहा कि 'कंसकी बात तुम्हें माननी ही चाहिये। तुम दोनों स्तनोंपर विषका लेप कर बालकोंको मारती हुई चली जाओ।' तदनन्तर पूतना जैसे ही चली, उसके दाहिने अङ्ग काँपने लगे और वह घबड़ा भी गयी। फिर भी जाकर श्रीकृष्णके मुखमें अपने स्तनोंको देकर जब दूध पिलाने लगी, तब श्रीकृष्णने उसके प्राणोंको ही खींच लिया और वह भयानक रूपमें चिल्लाती हुई गिर पड़ी। पूतना श्रीकृष्णके दर्शन, स्पर्श आदिके प्रभावसे सद्‌गतिको प्राप्त हो गयी। इसपर नारदजीके द्वारा श्रीकृष्णसे यह पूछे जानेपर कि 'उसे इतनी उत्तम गति कैसे प्राप्त हुई,' इसपर उन्होंने कहा—

प्राचीन कालमें सरस्वती नदीके किनारे कक्षीवान् नामक एक मुनि कठिन तपस्या कर रहे थे। एक दिन उनके आश्रमपर कालभीरु नामके एक तपस्वी अपनी स्त्री और अपनी पुत्री चारुमतीके साथ आये। कक्षीवान्ने उनका स्वागत किया। अल्प अवधिमें ही उस कन्याका कक्षीवान्के साथ प्रेम हो गया। कालभीरुने उन दोनोंका विवाह कर दिया। जब कालभीरु सपत्नीक वहाँसे चलने लगे, तब उन्होंने प्रार्थना की कि 'कृपया आप इसका कभी परित्याग न करेंगे।' कक्षीवान्ने

कहा कि 'यदि यह सद्व्यवहार करती रहेगी तो मैं इसका परित्याग नहीं करूँगा, किंतु शास्त्रोंमें पतिद्वेषिणी, कटुभाषिणी, परगृहवासिनी, हीन-जातिरताको त्याज्य बताया गया है। अतः इसे ऐसा न करनेका आप उपदेश दें।' कालभीरु पुत्रीको समझाकर पत्नीसहित घर लौट आये।

अपने पिताके चले जानेपर चारुमतीने अपने पतिसे विष्णु-भक्तिकी प्रशंसा कर सदा उनकी नवधा-भक्ति (उपासना) का विचार किया और दोनोंने प्रतिदिन तुलसी-पत्र, गन्ध, पुष्प, धूप-दीप एवं नित्य हवन आदिसे विष्णुकी आराधना आरम्भ कर दी। कक्षीवान्के तीर्थयात्रा चले जानेपर एक दिन चारुमती जब फल-फूल लेकर कुछ विलम्बसे घर आ रही थी, तब उसे मार्गमें एक दुष्ट व्यक्ति मिला। उसने उससे विवाहका प्रस्ताव रखा। चारुमतीने उसे बहुत समझाया, किंतु उसने उलटा समझाकर चारुमतीको भोगोंकी महत्ता बतलायी और उसे अपनी मधुर वाणीसे आकृष्ट कर लिया तथा उसे साथ लेकर चला गया।

उस दुष्टके साथ रहते-रहते चारुमती भी दुष्टा हो गयी। तीर्थयात्रासे लौटनेपर कक्षीवान्ने उसका पता लगाकर उसे अपने साथ लौटानेकी चेष्टा की और उसे उसके पिताकी कही हुई बातका स्मरण कराया, पर वह चारुमती वापस लौटनेको तैयार न हुई, तब उन्होंने उसे राक्षसी हो जानेका शाप दे दिया—

त्वं वञ्चयित्वा मां नूनं यदभूः कितवे रता।
प्रयातु राक्षसीं योनिं दुष्टे दुष्टप्रदूषिता॥
कदाचित् करुणासिन्धुः कृष्णस्संतारयिष्यति॥

(आदिपुराण १८। ५५-५६)

'तूने मेरी वञ्चना करके एक धूर्तके साथ प्रेम किया, अतः उस दुष्टके द्वारा दूषित होनेके कारण तू राक्षसयोनिको प्राप्त हो। कालान्तरमें करुणासिन्धु भगवान् श्रीकृष्ण तेरा उद्धार करेंगे—तुझे राक्षसी योनिसे छुड़ायेंगे।' परिणामस्वरूप वही चारुमती अगले जन्ममें पूतना नामकी राक्षसी हुई और श्रीकृष्णके द्वारा उसका उद्धार हुआ[1]।

अर्जुनका भक्ति-अभिमान-भङ्ग

(दिगम्बरकी भक्तिनिष्ठा)

एक बार अर्जुनको गर्व हुआ कि 'भगवान् श्रीकृष्णका सबसे लाड़ला मैं ही हूँ। तभी तो वे स्वयं '**पाण्डवानां धनञ्जयः**' कहते फूले नहीं समाते। उन्होंने मेरे प्रेममें आबद्ध होकर अपनी बहिन सुभद्राको भी मुझे सौंप दिया। समराङ्गणमें वे मेरे सारथि बने और मेरे निमित्त उन्होंने दौत्यादिका निन्द्य कृत्य स्वीकार किया, यहाँतक कि रणभूमिमें स्वयं अपने हाथोंसे मेरे घोड़ोंके घावतक भी धोते रहे। मैं यद्यपि उनकी प्रसन्नताके लिये कुछ भी नहीं करता, तथापि मेरे सुखी रहनेसे ही उन्हें बड़ा सुख तथा आनन्द मिलता है। सचमुच मैं उनका परम प्रियतम हूँ।'

प्रभुको इसे ताड़ते देर न लगी। एक दिन वे अर्जुनको वनभूमिके मार्गसे ले गये। अर्जुनने देखा कि एक नग्न मनुष्य बायें हाथमें तलवार लिये, भूमिपर पड़े सूखे तृण खा रहा है। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'सखे! यह कौन-सा जीव है?' श्रीकृष्णने विस्मयका अभिनय करते हुए कहा—'यह तो कोई क्षीव (शराबी) मालूम पड़ता है। इसका भोजन भी

१-ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड अध्याय १०, गर्गसंहिता गोलोकखण्ड अ० १३के अनुसार पूतना पूर्वजन्ममें बलिकी कन्या रत्नमाला थी। वामनावतारमें भगवान् श्रीहरि बलिके यज्ञमें पधारे तो सहसा रत्नमालाके हृदयमें वात्सल्यभाव उमड़ पड़ा और मन-ही-मन कहने लगी कि कदाचित् ऐसा पुत्र मुझे प्राप्त होता तो मैं उसे दूध पिलाती। वही रत्नमाला द्वापरके अन्तमें पूतना नामसे प्रसिद्ध हुई और अन्तर्यामी भगवान् विष्णुने कृष्णरूपमें अवतीर्ण होकर उसका स्तन-पान किया और उनके संस्पर्शसे उसका उद्धार हुआ।

इसी प्रकार आनन्दरामायण, पूर्वकाण्ड अ० ५ में एक कथा आती है कि भगवान् श्रीराम जब समस्त प्रजाके साथ स्वधाम चलने लगे तो सीताजीके निन्दक धोबी और कैकेयीकी दासी मन्थराकी अनिच्छा देखकर उन्हें कुशके साथ साकेतमें ही रहनेके लिये छोड़ दिया। अगले जन्ममें वही धोबी मथुराका रजक हुआ और मन्थरा पूतना हुई। कृष्णसे वैर रखनेके कारण दोनों ही उनके द्वारा मारे जानेपर [illegible] इन विभिन्न कथाओंकी संगति लगानी चाहिये।

विचित्र ही दिखलायी पड़ता है।' श्रीकृष्णको वहीं एक शिलाखण्डपर बैठाकर अर्जुन अकेले ही उस नग्न व्यक्तिकी ओर चले और उसके पास जाकर बोले—'पुण्यव्रत ! आप

मुझे क्षमा करेंगे, मैं अत्यन्त कौतूहलसे भरकर आपकी ओर आकृष्ट हुआ हूँ। मेरी यह जिज्ञासा है कि आपने मानवोचित भोजनका परित्याग करके इस तृणराशिको अपना खाद्य क्यों बनाया ?' क्षीबने कहा—'जाओ, तुम्हारा पथ निरापद हो। तुम्हारे कुतूहल-निराकरणके लिये मेरे पास रंचमात्र भी अवकाश नहीं। साथ ही ग्रासाच्छादन-जैसे तुच्छ पदार्थोंकी भी वृथा चिन्ता करनेका मेरे पास अवसर कहाँ है ?'

अर्जुनने कहा—'धर्मवेत्ता जन ज़िज्ञासापूर्ण कुतूहल-निवृत्तिको धर्म बतलाते हैं।' क्षीबने कहा—'देखता हूँ, तुम्हारे इस दुराग्रह-परिहारका कोई उपाय नहीं है। पर तुम्हीं बतलाओ कि इस दग्ध उदरकी पूर्तिके लिये क्या कोमल शिशु-तृण-राजिका वध किया जाय ?' अर्जुनने कहा—'योगेश्वर ! आपको तथा आपके इस सार्वभौम अहिंसा-महाव्रतको नमस्कार तथापि आपका चरित्र मुझ जड बुद्धिके लिये तो सर्वथा दुरवग्राह्य ही है; क्योंकि एक ओर तो तृणपर्यन्त प्राणियोंको अभय देनेवाला आपका यह अहिंसाका सार्वभौम महाव्रत और दूसरी ओर बायें हाथमें यह नग्न तलवार।'

नग्नने कहा—'देखता हूँ, तुम्हारा कौतूहल निरङ्कुश एवं दुर्वार है। अच्छा हो तुम इसे अपने मनोबलसे ही शान्त कर लो, क्योंकि तुम्हारे कौतूहल-निवारणके प्रयत्नमें मेरा जो अपने हृदयस्थ सखासे विच्छेद होगा, उसे मैं सहन नहीं कर सकूँगा। तो भी यदि तुम मेरे शत्रुओंको मारनेकी प्रतिज्ञा करो, तो निश्चय समझो कि मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा।'

अर्जुनने कहा—'क्या आपका भी कोई शत्रु है ? यदि ऐसा है तो वस्तुतः वह विश्वका शत्रु है और उसे मारनेके लिये मैं सदा प्रस्तुत हूँ।' उसने कहा—'वह अकेला नहीं, दो और हैं। इन तीनोंने मिलकर मेरे प्राणप्रिय सखाको अपमानित किया है।' अर्जुनने कहा—'बतलाइये, वे कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? कौन हैं आपके वे सखा और उनका अपमान कहाँ और कैसे हुआ है ? आप विश्वास रखें, मैं वृथा श्लाघा करनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ।'

उस दिगम्बरने कहा—'जगत्पालक प्रभु मेरे परम सखा जब श्रमसे सो रहे थे, तब उनकी छातीपर एक विप्राधमने तीव्र पादाघात किया और जब प्रभुने इसपर भी केवल यही कहा—'विप्र ! आपके चरणोंमें चोट तो नहीं आयी ?' यही नहीं, वे उस ब्राह्मणाधमके चरणको अपनी गोदमें लेकर दबाने लगे; पर उस ब्राह्मणने उधर दृष्टि भी नहीं डाली। मैं जब-जब ध्यानमें अपने परम मित्रके हृदयको देखता हूँ, तब-तब उस पद-चिह्नको देखकर मेरे हृदयमें शूल होता है। मैं उस चिह्नको मिटा न सका तो उस भू-कलङ्क ब्राह्मणको ही मिटा डालूँ।' अर्जुनने कहा—'तो क्या इस ब्रह्महत्याके आचरणसे ही आपके कर्तव्यका पालन होगा और वह ब्रह्महत्या भी और किसीकी नहीं, उसकी जो ज्ञानिकुलका आदिपुरुष है ?' क्षीबने कहा—'उस मेरे प्राणप्रियतम बन्धुके लिये ऐसा कौन-सा अकार्य है, जिसे मैं नहीं कर सकता ?'

अर्जुनने कहा—'अस्तु ! आप और किस पुरुषका विनाश चाहते हैं ?' क्षीबने कहा—'पुरुषका ? ऐसा क्यों कहते हो ? किस स्त्रीका विनाश चाहते हैं, यह पूछो। क्या तुमने नहीं सुना कि जिसके पाँच-पाँच पति हैं, उस स्त्रीने दुर्वासाके शापसे बचनेके लिये अपना जूठा शाक मेरे सखाको खिलाया था। यदि वह स्त्री कहीं मुझे दीख जाय तो मेरा यह खड्ग उसे अवश्य ही चाट जाय।'

अर्जुनने कहा—'हे योगेश्वर ! क्या ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्या करनेके लिये ही मेरी माँने मुझे स्तनपान कराया था ? यदि ऐसा ही था तो मेरा जन्म न लेना ही अच्छा था, यदि कोई

क्षत्रियोचित कार्य हो तो उसे करनेके लिये मुझे आज्ञा दें।'

यह सुनकर दिगम्बर बोला—'यदि तुम्हें थोड़ा भी अपने शौर्यका गर्व हो तो तुम उस क्षत्रियाधम निकृष्ट योद्धाका विनाशकर क्षत्रियकुलको निष्कलङ्क करो, जिसने मेरे सखाको घोड़ोंकी लगाम हाथमें सौंपकर सारथि बनाया था, दूसरेसे शक्ति उधार लेकर जो मनमें अपनेको वीर मानता है। वह कृत्रिम वीर यदि कभी मेरे सामने आ गया तो आततायी समझकर मैं उसे तुरंत मार डालूँगा; क्योंकि उसने जगदीश्वरका इतना बड़ा अपमान किया है।'

अर्जुनको अब भान हुआ कि मैं कितने पानीमें हूँ। उन्होंने कहा—'योगेश्वर! यदि आप चाहते हैं कि वह पापिष्ठ अभी लुप्त हो जाय तो आप अपनी तलवार मुझे दे दीजिये। योगिन्! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, इसी क्षण मैं आपको उसका मुण्ड दिखला रहा हूँ।' क्षीबने कहा—'तब तो इस तलवारके साथ मेरा आशीर्वाद लो और शीघ्र विजयी होकर लौटो।' खड्ग लेकर अर्जुनने कहा—'भगवान् शंकरकी कृपासे आपका यह आशीर्वाद पुनरुक्ति मात्र है, मैं आपसे विदा लेता हूँ और साथ ही आपको विदित होना चाहिये कि आपके सामने की हुई प्रतिज्ञासे मैं सर्वथा मुक्त होकर जा रहा हूँ।'

अर्जुनके लौटनेपर भगवान्ने कहा—'वह तो मदोन्मत्त मालूम पड़ता है, मैंने तुम्हें उधर निरस्त्र भेजकर ठीक नहीं किया, मुझे बड़ी चिन्ता हो रही थी।' अर्जुनने कहा—'वह तो महाराज! प्रचण्ड मूर्ति धारण किये मुझे ही खोज रहा है।' अन्तमें भगवान्ने उन्हें सारा रहस्य समझाया और बतलाया कि 'तीनों लोकोंमें वही प्रधान भगवद्भक्त है। प्राणोंका मोह छोड़कर अहिंसाव्रत अपनाया, पर प्रभुके अपमानका ध्यान आते ही ब्रह्महत्या, स्त्री-हत्या आदिके लिये भी तैयार हो गया। वस्तुतः **'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'**का उसीने ठीक अर्थ समझा है।' अन्तमें वह क्षीब अर्जुनके देखते-देखते भगवान्के हृदयमें प्रविष्ट हो गया। अर्जुनका अहंकार गलकर पानी हो गया।

श्रीहनुमान्जीका गर्व-भङ्ग

श्रीहनुमान्जी जब लङ्का-दहन करके लौट रहे थे, तब उन्हें समुद्रोल्लङ्घन, सीतान्वेषण, रावण-मद-मर्दन एवं लङ्का-दहन आदि कार्योंका कुछ गर्व हो गया। दयालु भगवान् इसे ताड़ गये। श्रीहनुमान्जी घोर गर्जना करते हुए जा ही रहे थे कि रास्तेमें उन्हें बड़ी प्यास लगी। महेन्द्राचलपर उन्होंने दृष्टि दौड़ायी तो उनकी दृष्टि एक मुनिपर गयी, जो शान्त बैठे हुए थे। उनके पास जाकर श्रीहनुमान्जीने कहा—'मुने! मैं श्रीरामचन्द्रजीके सीतान्वेषणका कार्य करके लौटा आ रहा हूँ। मुझे बड़ी प्यास लग रही है, थोड़ा जल दीजिये या किसी जलाशयका पता बताइये।' मुनिने उन्हें तर्जनी अङ्गुलिसे एक जलाशयकी ओर संकेत किया। श्रीहनुमान्जी श्रीसीताजीकी दी हुई चूडामणि, मुद्रिका और एक ब्रह्माजीका दिया हुआ पत्र—यह सब मुनिके आगे रखकर जल पीने चले गये। इतनेमें एक दूसरा बंदर आया, उसने इन सभी वस्तुओंको उठाकर मुनिके कमण्डलुमें डाल दिया। तबतक श्रीहनुमान्जी जल पीकर लौटे। उन्होंने अपनी वस्तुओंके सम्बन्धमें पूछा। मुनिने भौंहोंके संकेतसे उन्हें कमण्डलुकी ओर निर्देश किया। श्रीहनुमान्जीने चुपचाप जाकर कमण्डलुमें देखा तो ठीक उसी प्रकारकी रामनामाङ्कित सहस्रों मुद्रिकाएँ दिखलायी दीं। अब वे बहुत

घबराये। उन्होंने पूछा—'ये सब मुद्रिकाएँ आपको कहाँसे

मिलीं तथा इनमें मेरी मुद्रिका कौन-सी है ?'

मुनिने उत्तर दिया कि 'जब-जब श्रीरामावतार होता है और सीताहरणके पश्चात् हनुमान्‌जी पता लगाकर लौटते हैं, तब शोध-मुद्रिका यहीं छोड़ जाते हैं। वे ही सब मुद्रिकाएँ इसमें पड़ी हैं।' अब तो श्रीहनुमान्‌जीका गर्व गल गया। उन्होंने पूछा—'मुने ! कितने राघव यहाँ आये हैं ?' मुनिने कहा—'यह तो मुद्रिकाओंकी गणनासे ही पता चल सकता है।' पर श्रीहनुमान्‌जीने देखा तो उन मुद्रिकाओंका कोई अन्त नहीं था। उन्होंने सोचा—'भला, मुझ-जैसे कितने लोगोंने ऐसे कार्य कर रखे हैं, इसमें मेरी क्या गणना।' फिर वे वहाँसे चलकर अङ्गदादिसे मिलकर प्रभुके पास आये। वहाँ वे अत्यन्त डरते हुए कहने लगे—'प्रभो ! मुझसे एक बड़ा अपराध बन गया है।' और फिर सारा मुनि-वृत्तान्त सुना दिया। प्रभुने कहा—'भद्र ! मुनिरूपसे तुम्हारे कल्याणके लिये मैंने ही वह कौतुक रचा था। देखो, वह मुद्रिका तो मेरी अङ्गुलिमें ही लगी है।'

अब श्रीअञ्जनीनन्दन, केसरीकिशोर हनुमंतलालका गर्व सर्वथा नष्ट हो गया। उन्होंने प्रभुके विष्णुस्वरूपपर विश्वास किया और बड़ी ही श्रद्धासे वे उनके चरणोंपर गिर गये और चिरकालतक लेटे रहे।

भीमसेनका गर्व-भङ्ग

भीमसेनको अपनी शक्तिका बड़ा गर्व था। एक बार वनवास-कालमें जब ये लोग गन्धमादन पर्वतपर रह रहे थे, तब द्रौपदीको एक सहस्रदल-कमल वायुकोणसे उड़ता आता दीखा। उसे उसने ले लिया और भीमसेनसे उसी प्रकारका एक और कमल लानेको कहा। भीमसेन वायु-कोणकी ओर चल पड़े। चलते समय भीषण गर्जना करना उनका स्वभाव ही था। उनके इस भीषण शब्दसे बाघ अपनी गुफाओंको छोड़कर भागने लगे, जंगली जीव जहाँ-तहाँ छिपने लगे, पक्षी भयभीत होकर उड़ने लगे और मृगोंके झुंड घबराकर चौकड़ी भरने लगे। भीमसेनकी गर्जनासे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। वे बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे। आगे जानेपर गन्धमादनकी चोटीपर उन्हें एक विशाल केलेका वन मिला। महाबली भीमसेन नृसिंहके समान गर्जना करते हुए उसके भीतर घुस गये।

इधर इसी वनमें महावीर हनुमान्‌जी रहते थे। उन्हें अपने छोटे भाई भीमसेनके उधर आनेका पता लग गया। उन्होंने सोचा कि अब आगे स्वर्गके मार्गमें जाना भी भीमसेनके लिये भयकारक होगा। यह सोचकर वे भीमसेनके रास्तेमें लेट गये। अब भीमसेन उनके पास पहुँचे और भीषण सिंहनाद किये। भीमसेनकी उस गर्जनासे वनके जीव-जन्तुओं और पक्षियोंको बड़ा त्रास हुआ। हनुमान्‌जीने भी अपनी आँखें खोलीं और उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा—'भैया ! मैं तो रोगी हूँ, यहाँ आनन्दसे सो रहा था, तुमने आकर मुझे क्यों जगा दिया ? समझदार व्यक्तिको जीवोंपर दया करनी चाहिये। यहाँसे आगे यह पर्वत मनुष्योंके लिये अगम्य है। अतः अब तुम मीठे कन्द-मूल-फल खाकर यहींसे लौट जाओ। आगे जाकर व्यर्थ अपने प्राणोंको संकटमें क्यों डालते हो ?'

भीमसेनने कहा—'मैं मरूँ या बचूँ, इस विषयमें तुमसे तो नहीं पूछ रहा हूँ। तुम जरा उठकर मुझे रास्ता दे दो।' हनुमान्‌जीने कहा—'मैं रोगसे पीड़ित हूँ, तुम्हें जाना ही है तो मुझे लाँघकर चले जाओ।' भीमसेन बोले—'परमात्मा समस्त प्राणियोंकी देहमें हैं, किसीको लाँघकर मैं उसका अपमान नहीं करना चाहता।' हनुमान्‌जीने कहा—

'तो तुम मेरी पूँछ पकड़कर हटा दो और निकल जाओ।' हनुमान्जीका यह कहना था कि भीमसेनने अवज्ञापूर्वक बायें हाथसे हनुमान्जीकी पूँछ पकड़कर बड़े जोरसे खींची। पर वह टस-से-मस न हुई। अब क्रोधसे भरकर उन्होंने दोनों हाथोंसे उनकी पूँछको खींचना आरम्भ किया। पर इतनेपर भी उनकी पूँछ टस-से-मस न हुई। जब भीमकी सारी शक्ति व्यर्थ चली गयी, तब उनका मुँह लज्जासे झुक गया। वे समझ गये कि यह वानर कोई साधारण वानर नहीं है। अतएव उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगे। हनुमान्जीने अपना परिचय दिया और बहुत-सी नीतिका उपदेश करके उन्हें वहींसे लौटा दिया। वहीं उन्होंने भीमसेनको यह वरदान दिया था कि महाभारतयुद्धके समय मैं अर्जुनकी ध्वजापर बैठकर तुमलोगोंकी सहायता करूँगा।

देवर्षि नारदको स्त्री-रूपकी प्राप्ति

एक समयकी बात है, देवर्षि नारद वीणा बजाते हुए श्वेतद्वीपमें भगवान् विष्णुके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने चतुर्भुज भगवान् विष्णुको मनोहारिणी लक्ष्मीजीके साथ क्रीडा करते देखा। शुभलक्षणा भगवती लक्ष्मी देवर्षि नारदको देखकर तत्काल वहाँसे हट गयीं। तब आश्चर्ययुक्त नारदजीने देवाधिदेव भगवान् विष्णुसे पूछा—'पद्मनाभ! मुझे आते देखकर भगवती लक्ष्मीजी आपके पाससे क्यों चली गयीं? मैं न कोई नीच हूँ और न धूर्त। मैं एक तपस्वी हूँ। इन्द्रियाँ मेरे वशमें रहती हैं। मायाका मुझपर कोई असर नहीं और मैं क्रोधको भी जीत चुका हूँ।'

भगवान् विष्णुने कहा—'नारद! यह काम नीतिके विरुद्ध है। स्त्रीको अपने पतिके अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुषके समक्ष नहीं जाना चाहिये। इन्द्रियजयी योगियोंके लिये भी माया अजेय है।' तब नारदजीने श्रीभगवान्से पूछा—'प्रभो! मायाका रूप, आकृति और शक्ति क्या है? उसे आप शीघ्र ही मुझे समझा देनेकी कृपा करें।' भगवान् विष्णु बोले—'अखिल जगत्को धारण करनेकी शक्ति रखनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया और अनेकरूपा है। वह सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त है। तुम्हें यदि उसे देखनेकी इच्छा है तो आओ, किसी अन्य लोकमें चलें।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु देवर्षि नारदके साथ गरुडपर सवार होकर वहाँसे चल पड़े। थोड़े ही समयमें वे भूतलपर कान्यकुब्ज (कन्नौज) के पास पहुँच गये। वहाँ एक दिव्य सरोवर दिखायी पड़ा, जो विकसित कमलोंसे शोभायमान हो रहा था तथा चक्रवाक, सारस, हंस आदि जलपक्षियोंके मधुर कलरवसे युक्त था। उसे देखकर भगवान् विष्णुने नारदजीसे कहा—'देवर्षे! पहले इस सरोवरके जलमें स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् हम श्रेष्ठ नगरी कान्यकुब्जमें चलेंगे।'

इस प्रकार कहकर भगवान्ने नारदजीसे वीणा एवं मृगचर्म ले लिया और उन्हें स्नान करनेके लिये कहा। नारदजी भी विष्णु-मायासे प्रेरित हो कुशसहित आचमन करके उस दिव्य सरोवरमें स्नान करनेके लिये उतरे। ज्यों ही उन्होंने जलमें डुबकी लगायी, त्यों ही उनकी पुरुषाकृति विलुप्त हो गयी और वे एक सुन्दर रमणीके रूपमें परिवर्तित हो गये। उसी क्षण श्रीहरि उनकी वीणा एवं पवित्र मृगचर्म लेकर आकाशमार्गसे अपने परमधाम पधार गये। मायाके वशीभूत होनेसे मुनिका भूतकालविषयक सम्पूर्ण ज्ञान तिरोहित हो गया। अत्यन्त मनोरम रमणीरूपको पाकर देवर्षि उस सरोवरसे बाहर निकल आये और मन-ही-मन कुछ सोचने लगे। दैववशात् अकस्मात् राजा तालध्वज अपने सेवकोंके साथ उसी सरोवरपर आ पहुँचे। युवावस्थाको प्राप्त सुन्दर शरीरवाले वे राजा भूषणोंसे अलंकृत होकर दूसरे कामदेवकी शोभाको प्राप्त हो रहे थे। उन्होंने जब अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत, सम्पूर्ण सौन्दर्यकी प्रतिमूर्ति नारदरूपी सुन्दरीको देखा तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने रमणीरत्न नारदजीसे प्रश्न किया—'कल्याणि! तुम कौन हो? कौन देवता तुम्हारे पिता हैं? रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली तुम अबला अकेली क्यों भटक रही हो? तुम्हारा विवाह हो चुका है अथवा तुम अभी कुमारी हो? यदि तुम कुमारी हो तो मुझ श्रेष्ठ पतिको पाकर मेरे सहयोगसे मनोऽभिलषित भोग प्राप्त कर सकती हो,

इसमें कोई संशय नहीं है।'

राजाके पूछनेपर मायामोहित स्त्रीरूपधारी नारदजीने

कहा—'राजन्! मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती कि मैं किसकी कन्या हूँ। मेरे माता-पिता कहाँ हैं और कौन हैं? मुझे इस सरोवरपर कौन लाया है, इसका भी मुझे कुछ पता नहीं है। आप धर्मज्ञ पुरुष हैं। मैं आपके अधीन हूँ, आपके अतिरिक्त मेरा दूसरा कोई रक्षक नहीं है।' यह सुनकर राजा तालध्वज बड़े प्रसन्न हुए। वे उस दिव्य रमणीको अपने महलमें ले आये और शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्तमें उसका पाणिग्रहण कर लिया। राजा उस सुन्दरीसे अतिशय स्नेह करने लगे। इस प्रकार राजा तालध्वजके प्रति श्रेष्ठ पत्नीभावसे समर्पित उस रमणीरूपी नारदजीका अत्यधिक समय बीत गया। उस समय क्रीडा-रसने उनकी सारी विवेकशक्तिको नष्ट कर दिया था। 'ये मेरे पतिदेव हैं, मैं इनकी भार्या हूँ, अनेक स्त्रियोंकी अपेक्षा मैं इन्हें अधिक प्रिय हूँ, इसलिये मुझे पटरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त है, मैं सती-साध्वी एवं विलासज्ञा हूँ, मेरा जीवन सफल है' प्रेममें आबद्ध होकर रमणीरूपी नारदजीका सम्पूर्ण समय इसी चिन्तनमें व्यतीत होता था। उस समय मायाजनित आसक्तिके कारण उन्हें धर्मशास्त्रका रहस्य एवं ब्रह्मसम्बन्धी सनातन ज्ञान बिलकुल ही विस्मृत हो गया था। इस प्रकार क्रीडामें आसक्त हुए उन दोनोंके बारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गये। समयानुसार राजा तालध्वजके अंशसे रमणीरूप नारदजीको बारह श्रेष्ठ पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, जिससे उन दोनोंको अत्यधिक प्रसन्नता हुई। गृहस्थ-जीवनके नानाविध प्रसंगोंमें सुखपूर्वक समय व्यतीत करते हुए वे दम्पति ईश्वरकी कृपासे अनेक पुत्रों, पौत्रों एवं पुत्रवधुओंसे युक्त हो सांसारिक प्रपञ्चोंमें लीन तथा उसीमें जीवनकी सार्थकताको समझते हुए, अपने-आपको कृतकृत्य मानने लगे। मायाके वशीभूत हो नारदजीको यही ध्यान बना रहता था कि 'मैं उत्तम आचरणोंवाली एक पतिव्रता नारी हूँ। मेरे बहुत-से पुत्र-पौत्र हैं और इस जगत्‌में मेरा जीवन धन्य है।'

कुछ समय बाद ईश्वरकी प्रेरणासे किसी दूसरे प्रतापी नरेशने चतुरङ्गिणी सेनाके साथ राजा तालध्वजके राज्यपर चढ़ाई कर दी। शत्रु नरेशसे युद्ध करनेके लिये राजा तालध्वज भी अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ सेना सजाकर निकल पड़े। विकराल कालके प्रभावसे राजा तालध्वजके सभी पुत्र-पौत्र रणभूमिमें मारे गये और पराजित एवं हतोत्साहित होकर वे घर लौट आये। जब रमणीरूप नारदजीको यह समाचार ज्ञात हुआ तब उनके दुःखकी सीमा न रही। वे युद्धभूमिमें पहुँचकर आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहाते हुए करुण-विलाप करने लगे—'हा पुत्रो! तुम कहाँ चले गये? दैव अत्यन्त दुर्दान्त है। उसे कोई भी टाल नहीं सकता।' वे इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे, इतनेमें भगवान् विष्णु एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पधारे। मनोहर आकृति एवं

सुन्दर वस्त्रोंसे युक्त वे ब्राह्मणश्रेष्ठ नारदजीको इस प्रकार समझाने लगे—'कोयलके समान मधुर बोलनेवाली सुन्दरि! तुम क्यों रो रही हो? देखो, यह संसार मात्र भ्रम है। पति-पुत्रादि, गृह एवं अन्य विषयोंमें मोहवश ऐसी स्थिति आ जाती है। सोचो, तुम कौन हो? ये किसके पुत्र हैं? यह सब संसारकी माया है। उठो और रोना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ। मर्यादाकी रक्षाके

लिये धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बान्धवोंके निमित्त सर्वथा तीर्थमें स्नान करके तर्पण करे।'

इस प्रकार ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा समझाये जानेपर स्त्रीरूपी नारदजीको कुछ धैर्य हुआ और वे राजा तालध्वजके साथ तीर्थ-स्नान एवं तर्पणादिके लिये ब्राह्मणवेषधारी विष्णुके पीछे-पीछे चल पड़े। श्रीहरि उन दोनों शोकसंतप्त प्राणियोंको पुंतीर्थके अन्तर्गत एक पवित्र सरोवरके निकट ले गये। तत्पश्चात् भगवान्ने नारदजीसे कहा—'गजगामिनि ! कार्य करनेका समय उपस्थित है। तुम इस पवित्र तीर्थमें स्नान करके पुत्र-सम्बन्धी निरर्थक शोकसे रहित हो जाओ। जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भ्राता और जामाता मर चुके हैं। उनमें तुम किसका शोक मनाती हो ? यह सब मनका भ्रम है।'

ब्राह्मणरूपी श्रीहरिके मुखसे यह सुनकर उनकी प्रेरणासे स्त्रीरूपी नारदजीने उस सरोवरमें डुबकी लगायी और अचानक वे पूर्ववत् पुरुष-शरीरको प्राप्त हो गये। जब उन्होंने सरोवरके तटपर दृष्टि डाली तो वहाँ उन्होंने भगवान् विष्णुको देखा, जो उनकी वीणा एवं मृगचर्म लेकर खड़े थे। उसी समय उनकी विस्मृति दूर हो गयी और वे पूर्ववत् श्रेष्ठ ज्ञानसे युक्त होकर अपने जीवनमें घटित इस विलक्षण घटनापर विचार करने लगे। तभी भगवान् श्रीहरिने उनसे कहा—'नारद ! यहाँ आओ, जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो ?' नारदजीने सोचा कि 'मैं तो अभी अत्यन्त सुन्दर स्त्रीके रूपमें था, फिर कैसे पुरुष हो गया ?' उनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

इधर जब राजा तालध्वजने अपनी पत्नीके स्थानपर देवर्षि नारदको देखा तो वे अपनी प्राणप्रिया भार्याके दुःखसे व्याकुल होकर करुण-विलाप करने लगे। उन्होंने समझा कि मेरी रानी जलमें डूबकर मृत्युको प्राप्त हो गयी। उनका शोक बढ़ गया और वे उन्मत्तकी भाँति रोने लगे। तब भगवान् श्रीहरिने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्वक वचन कहकर उन्हें चुप कराया। श्रीहरिके द्वारा मोहका निवारण हो जानेपर राजा तालध्वजको ज्ञानोदय हो गया और वे अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वनमें जाकर तपस्यामें लीन हो गये।

तत्पश्चात् नारदजीने मधुर मुस्कानसे युक्त जगदीश्वर विष्णुके मुख-कमलका दर्शन करते हुए कहा—'भगवन् ! आपने मुझे ठग लिया, किंतु मायाकी असीम शक्ति अब मेरी

समझमें आ गयी। स्त्रीका शरीर प्राप्त करके मेरा सम्पूर्ण ज्ञान माया एवं मोहमें आसक्त होकर सर्वथा लुप्त हो गया था। मैं यह कभी भी नहीं जान सका कि मैं ब्रह्माका मानस-पुत्र देवर्षि नारद हूँ।' श्रीहरिने कहा—'महामति नारद ! यह सब भगवती महामायाका मनोरञ्जन है। उन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी दशाएँ उपस्थित होती रहती हैं। जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति स्वप्नमें निश्चय नहीं जान पाता कि यह भ्रम है, वैसे ही महामायाका ऐश्वर्य समझमें आ जाना बड़ा ही कठिन काम है। नारद ! महामायाके गुणोंकी दुर्लङ्घ्य सीमाको जाननेमें शंकर और ब्रह्मा भी असफल हैं। फिर मन्द बुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य इसके वास्तविक रहस्यको जाननेमें समर्थ हो सकता है ?' यह सुनकर देवर्षि नारदने संशयसे रहित हो महामायाको प्रणाम किया। फिर वे अहंशून्य होकर हरि-गुण-गान करते हुए पूर्ववत् इच्छानुसार विचरण करने लगे। धन्य भगवती महामाया एवं उसकी अपूर्व लीला—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

(देवीभागवतपुराण)

चित्रध्वजसे चित्रकला

प्राचीन कालमें चन्द्रप्रभ नामके एक राजर्षि थे। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उन्हें चित्रध्वज नामक सुन्दर पुत्र प्राप्त था। वह बचपनसे ही भगवान्‌का भक्त था। जब वह बारह वर्षका हुआ, तब राजाने किसी ब्राह्मणके द्वारा उसे अष्टादशाक्षर **(ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा)** मन्त्र दिलवा दिया। बालकने मन्त्रपूत अमृतमय जलमें स्नान करके पिताको प्रणाम किया और एक दिन वह सुन्दर पवित्र नवीन वस्त्र तथा आभूषण धारण करके श्रीविष्णु-मन्दिरमें चला गया। वहाँ वह यमुना-पुलिनपर वनमें गोपबालाओंके साथ क्रीडा करते हुए भुवनमोहन श्रीकृष्णका ध्यान करने लगा। फिर तो भगवान्‌के लिये उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। भगवत्कृपासे उसे परमा विद्या प्राप्त हुई और उसने स्वप्नमें देखा—

एक दिव्य भवनमें सुवर्णपीठपर समस्त सुलक्षणोंसे युक्त श्यामवर्ण स्निग्ध और लावण्यशाली त्रिभङ्गललित भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर श्रीविग्रह है। सिरपर मयूरपिच्छ सुशोभित है। वे श्रीविग्रहरूप भगवान् मानो अधरोंपर स्थापित स्वर्णवेणु बजा रहे हैं। उनके दोनों ओर दो सुन्दरियाँ विराजमान हैं। चित्रध्वजने इस प्रकार वेशविलासयुक्त श्रीकृष्णको देखकर लज्जावनत होकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर श्रीकृष्णने अपनी दाहिनी ओर बैठी हुई लज्जिता प्रियासे हँसते हुए कहा—'मृगलोचने,! तुम अपने ही अंशभूत इस बालकके लिये ऐसा चिन्तन करो मानो यह तुम्हारी-जैसी ही दिव्य अद्‌भुत युवती है। तुम्हारे और इसके शरीरमें कोई भी भेद नहीं रहना चाहिये। तुम्हारे ऐसा चिन्तन करनेपर तुम्हारे अङ्ग-तेजका स्पर्श पाकर यह बालक तुम्हारे रूपको प्राप्त हो जायगा।'

तब वह कमलनयनी चित्रध्वजके पास जाकर अपने अङ्गोंके समान उसके समस्त अङ्गोंका अभेदभावसे चिन्तन करने लगी। उस देवीके अङ्गोंकी तेजोराशि चित्रध्वजके अङ्गोंका आश्रय करके उसका वैसा ही निर्माण करने लगी। देखते-ही-देखते वह सुन्दर रमणीय युवती-रूपमें परिणत हो गयी। वह रमणी सम्पूर्ण सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा हार-मालादिसे सुशोभित होकर वैसे ही हाव-भावोंसे सम्पन्न स्त्री दीखने लगी। तब एक दीपकसे दूसरे दीपकके जल उठनेकी भाँति देवीशरीरसे उत्पन्न देवीमूर्तिको देखकर उस देवीने उस लज्जासे संकुचित और यौवन-सुलभ मन्द मुस्कानसे युक्त नवीन रमणीका हाथ पकड़कर परम आनन्दसे उसे श्रीगोविन्दकी बायीं ओर बैठा दिया। तदनन्तर उस देवीने श्रीभगवान्‌से कहा—'प्रभो ! आपकी यह दासी उपस्थित है, इसका नामकरण कीजिये और इसे आपकी रुचिकी कौन-सी अत्यन्त प्रिय सेवामें नियुक्त किया जायगा, यह भी बता दीजिये।' इसके पश्चात् उसने स्वयं ही उसका 'चित्रकला' नाम रखकर उससे कहा कि 'तुम इस वीणाको लो और सदा-सर्वदा प्रभुके समीप रहकर विविध स्वरोंमें मेरे प्राणनाथका गुणगान किया करो। तुम्हारे लिये यही सेवा है।'

'चित्रकला'ने उसका आदेश स्वीकार करके भगवान् श्रीमाधवको प्रणाम किया और उनकी प्रेयसीके चरणारविन्दकी धूलि लेकर वह युगलस्वरूपके आनन्दवर्धक गुणोंका सुललित स्वरोंमें गान करने लगी। तब आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका आलिङ्गन किया। भगवान् श्रीकृष्णके आनन्दमय स्पर्शसे चित्रकला ज्यों ही आनन्द-सागरमें निमग्न हुई कि उसकी नींद टूट गयी। अब तो श्रीकृष्ण-प्रेम-परवश होकर कुमार चित्रध्वज स्वप्नके उस अपार अलौकिक आनन्दका स्मरण करके फुफकार मारकर उच्च स्वरसे रोने लगा। उसका आहार-विहार सब छूट गया। महीनेभर इस प्रकार व्याकुल हृदयसे घरमें रहा, फिर एक दिन अर्धरात्रिके समय श्रीकृष्णको सहचर बनाकर वह घरसे निकल पड़ा और श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये मुनियोंके लिये भी दुःसाध्य तपस्या करने लगा। इसी महामुनिने देह-त्यागके अनन्तर वीरगुप्त नामक गोपके घर 'चित्रकला' नामसे कन्यारूपसे जन्म लिया। चित्रकला गोपीके कंधेपर सदा-सर्वदा सप्तस्वर-शोभित मनोहर वीणा रहती है और यह भगवान्‌के समीप युगल-स्वरूप श्रीराधाकृष्णका नित्य-निरन्तर गुणगान किया करती है। (पद्मपुराण)

असूया-दोषसे पीडित राजा बाहुको परमपदकी प्राप्ति

सूर्यवंशमें एक बाहु नामवाले राजा हो गये हैं। उनके पिताका नाम वृक था। राजा बाहु बड़े धर्मपरायण थे और सारी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक समय राजा बाहुके मनमें असूया (गुणोंमें दोष-दृष्टि) के साथ बड़ा भारी अहंकार उत्पन्न हुआ, जो सब सम्पत्तियोंका नाश करनेवाला तथा अपने विनाशका भी हेतु है। वे सोचने लगे—'मैं समस्त लोकोंका पालन करनेवाला बलवान् राजा हूँ। मैंने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। मुझसे पूजनीय दूसरा कौन है ? मैं विद्वान् एवं श्रीमान् हूँ। मैंने सब शत्रुओंको जीत लिया है। मुझे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान है और नीतिशास्त्रका तो मैं बहुत बड़ा पण्डित हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता और न मेरे ऐश्वर्यको हानि पहुँचा सकता है। इस पृथ्वीपर मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है ?' इस प्रकार अहंकारके वशीभूत होनेपर उनके मनमें दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि हो गयी। दोषदृष्टि होनेसे उस राजाके हृदयमें काम प्रबल हो उठा। इन सब दोषोंके स्थित होनेपर मनुष्यका विनाश होना निश्चित है। यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक-एक भी अनर्थका कारण होता है, फिर जहाँ ये चारों मौजूद हों वहाँके लिये क्या कहना ? उनके भीतर बड़ी भारी असूया पैदा हो गयी, जो लोकका विरोध, अपने देहका नाश तथा सब सम्पत्तियोंका अन्त करनेवाली होती है। असूयासे भरे हुए चित्तवाले पुरुषोंके पास यदि धन-सम्पत्ति मौजूद हो तो उसे भूसेकी आगमें वायुके संयोगके समान समझो। जिनका चित्त दूसरोंके दोष देखनेमें लगा होता है, जो पाखण्डपूर्ण आचारका पालन करते हैं तथा सदा कटुवचन बोला करते हैं, उन्हें इस लोकमें और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता। जिनका मन असूयादोषसे दूषित है तथा जो सदा निष्ठुर भाषण किया करते हैं, उनके प्रियजन, पुत्र तथा भाई-बन्धु भी शत्रु बन जाते हैं। जो परायी स्त्रीको देखकर मन-ही-मन उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करता है, वह अपनी सम्पत्तिका नाश करनेके लिये स्वयं ही कुठार बन गया है—इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य अपने कल्याणका नाश करनेके लिये प्रयत्न करता है, वही दूसरोंका कल्याण देखकर अपनी कुत्सित बुद्धिके कारण उनसे डाह करने लगता है। जो मित्र, संतान, गृह, क्षेत्र, धन-धान्य और पशु—सबकी हानि देखना चाहता है, वही सदा दूसरोंसे असूया करता है।

तदनन्तर राजा बाहुका हृदय असूया-दोषसे दूषित हो जानेके कारण जब वे अत्यन्त उद्दण्ड हो गये, तब हैहय और तालजङ्घ-कुलके क्षत्रिय उनके प्रबल शत्रु बन गये। असूया होनेपर दूसरे जीवोंके साथ द्वेष बहुत बढ़ जाता है, इसमें संदेह नहीं है। असूयासे दूषित चित्तवाले उस राजाका अपने शत्रुओंके साथ लगातार एक मासतक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्तमें वे अपने वैरी हैहय और तालजङ्घ नामवाले क्षत्रियोंसे पराजित हो गये। अतः दुःखी होकर राजा बाहु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ वनमें चले गये। वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब देखकर उन्हें बड़ा संतोष हुआ, परंतु उनके मनमें तो असूया भरी हुई थी, इसलिये उनका भाव देखकर उस जलाशयके पक्षी भी इधर-उधर छिप गये। वे परस्पर बातें करते हुए कहने लगे—'अहो ! बड़े कष्टकी बात है। यहाँ तो कोई भयानक पुरुष आ गया।' राजाने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ उस सरोवरमें प्रवेश करके जल पीया और वृक्षके नीचे उसकी सुखद छायामें बैठ गये। गुणवान् मनुष्य कोई भी क्यों न हो, वह सबके लिये श्लाघ्य होता है और सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे युक्त होनेपर भी गुणहीन मनुष्य सदा लोगोंसे निन्दित ही होता है। उस समय बाहुकी बहुत निन्दा हुई थी। वे संसारमें अपने पुरुषार्थ और यशका नाश करके मरे हुएकी भाँति वनमें रहते थे। अपकीर्तिके समान कोई मृत्यु नहीं है। क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। निन्दाके समान कोई पाप नहीं है और मोहके समान कोई भय नहीं है। असूयाके समान कोई अपकीर्ति नहीं है, कामके समान कोई आग नहीं है, रागके समान कोई बन्धन नहीं है और सङ्ग अथवा आसक्तिके समान कोई विष नहीं है—इस प्रकार बहुत विलाप करके राजा बाहु अत्यन्त दुःखित हो गये। मानसिक संताप और बुढ़ापेके कारण उनका शरीर जर्जरीभूत हो गया। इस तरह बहुत समय बीतनेके पश्चात् और्व मुनिके आश्रमके निकट रोगसे ग्रस्त होकर राजा बाहु संसारसे चल बसे। उनकी छोटी पत्नी यद्यपि गर्भवती थी तो भी दुःखसे आतुर हो दीर्घकालतक विलाप करके उसने पतिके साथ चितापर जल मरनेका विचार

किया। इसी बीचमें परम बुद्धिमान् और्व मुनि, जो महान् तेजकी निधि थे, वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने समाधिके द्वारा यह सब वृत्तान्त जान लिया था। मुनीश्वरगण तीनों कालोंके ज्ञाता होते हैं। वे असूयारहित महात्मा अपनी ज्ञानदृष्टिसे भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ देख लेते हैं। परम पुण्यात्मा और्व मुनि उसी स्थानपर आये, जहाँ राजा बाहुकी प्यारी एवं पतिव्रता पत्नी खड़ी थी। रानीको चितापर चढ़नेके लिये उद्यत देख मुनिवर और्व धर्ममूलक वचन बोले—'महाराज बाहुकी प्यारी पत्नी ! तू पतिव्रता है; किंतु चितापर चढ़नेका अत्यन्त

साहसपूर्ण कार्य न कर। तेरे गर्भमें शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती बालक है। कल्याणमयी राजपुत्री ! जिनकी संतान बहुत छोटी हो, जो गर्भवती हों, जिन्होंने अभी ऋतुकाल न देखा हो तथा जो रजस्वला हों, ऐसी स्त्रियाँ पतिके साथ चितापर नहीं चढ़तीं—उनके लिये चितारोहणका निषेध है।'

मुनिके इस प्रकार कहनेपर पतिव्रता रानीको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया और वह अत्यन्त दुःखसे पीडित हो अपने मरे हुए पतिके चरणकमलोंको पकड़कर विलाप करने लगी। महात्मा और्व सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वे रानीसे पुनः बोले—'राजकुमारी ! तू रो मत, तुझे श्रेष्ठ राजलक्ष्मी प्राप्त होगी। महाभागे ! इस समय सज्जन पुरुषोंके सहयोगसे इस मृतक शरीरका दाह-संस्कार करना उचित है, अतः शोक त्यागकर तू समयोचित कार्य कर। पण्डित हो या मूर्ख, दरिद्र हो या धनवान्, तथा दुराचारी हो या सदाचारी—सबपर मृत्युकी समान दृष्टि है। नगरमें हो या वनमें, समुद्रमें हो या पर्वतपर, जिस जीवने जो कर्म किया है, उसे उसका भोग अवश्य करना होगा। जैसे दुःख बिना बुलाये ही प्राणियोंके पास चले आते हैं, उसी प्रकार सुख भी आ सकते हैं—ऐसी मेरी मान्यता है। इस विषयमें दैव ही प्रबल है। पूर्वजन्मके जो-जो कर्म हैं, उन्हीं-उन्हींको यहाँ भोगना पड़ता है। कमलानने ! जीव गर्भमें हों या बाल्यावस्थामें, जवानीमें हों या बुढ़ापेमें, उन्हें मृत्युके अधीन अवश्य होना पड़ता है। अतः सुव्रते ! इस दुःखको त्यागकर तू सुखी हो जा। पतिका अन्त्येष्टि-संस्कार कर और विवेकके द्वारा स्थिर हो जा। यह शरीर कर्मपाशमें बँधा हुआ तथा हजारों दुःख और व्याधियोंसे घिरा हुआ है। इसमें सुखका तो आभास ही मात्र है। क्लेश ही अधिक होता है।'

परम बुद्धिमान् और्व मुनिने रानीको इस प्रकार समझा-बुझाकर उससे दाह-सम्बन्धी सब कार्य करवाये। फिर उसने शोक त्याग दिया और मुनीश्वरको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आप-जैसे संत दूसरोंकी भलाईकी ही अभिलाषा रखते हैं—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पृथ्वीपर जितने भी वृक्ष हैं, वे अपने उपभोगके लिये नहीं फलते—उनका फल दूसरोंके ही काम आता है। इसलिये जो दूसरोंके दुःखसे दुःखी और दूसरोंकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होता है, वही नररूपधारी जगदीश्वर नारायण है। संत पुरुष दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये शास्त्र सुनते हैं और अवसर आनेपर सबका दुःख दूर करनेके लिये शास्त्रोंके वचन कहते हैं। जहाँ संत रहते हैं, वहाँ दुःख नहीं रहता; क्योंकि जहाँ सूर्य है, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है ?'

इस प्रकार कहकर रानीने उस तालाबके किनारे मुनिकी बतायी हुई विधिके अनुसार अपने पतिकी अन्य पारलौकिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं। वहाँ और्व मुनिके स्थित होनेसे राजा बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर मुनीश्वर और्वको प्रणाम करके परम धामको चले गये। जिनपर महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ती है, वे महापातक या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। पुण्यात्मा पुरुष यदि किसीके शरीरको, शरीरके भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख लें तो वह परम पदको प्राप्त

हो जाता है।

महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः।
परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः॥

कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम्॥

(७।७४-७५)

पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

[विशेषाङ्क पृ० ३७ से आगे]

पुराणोंकी दार्शनिकता

यद्यपि ब्रह्मसूत्रोंमें सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीन गुणोंको स्वीकार नहीं किया गया है, भगवदाश्रित मायाशक्तिसे ही आकाशादिकी अभिव्यक्ति मानी गयी है, तथापि महाभारत जो कि इतिहास और पुराण उभय-लक्षण-लक्षित है, उसमें और भागवतादि पुराणोंमें त्रिगुण और त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका जहाँ स्फुट वर्णन है, वहाँ महत्, अहं आदि पदार्थोंका प्रायः सांख्य-शैलीमें ही प्रतिपादन है। भगवदाश्रित प्रधान या प्रकृतिको मानकर तथा अनात्मप्रपञ्चको अनिर्वचनीय मानकर पुराणोंने अद्वैत पर्यवसायी सेश्वर सांख्यका प्रतिपादन किया है। ईश्वरको सेश्वर सांख्यकी शैलीमें प्रपञ्चका केवल निमित्तकारण माना हो, ऐसी बात नहीं है, प्रत्युत **'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा-दृष्टान्तानुपरोधात्'** (ब्रह्मसूत्र १।४।२३) को इस ब्रह्मसूत्रशैलीमें अभिन्न निमित्तोपादानकारण माना है।

सांख्यशैलीमें महदादिका प्रतिपादक होनेपर भी कहीं-कहीं पुराणोंमें सांख्यविलक्षण विधाको अपनानेकी प्रथा भी है। यथा—श्रीमद्भागवतमें महत्तत्त्वके लिये 'बुद्धि' शब्दका उपयोग न कर प्रायः 'चित्त' शब्दका ही उपयोग हुआ है। बुद्धिको वैकारिक (सात्त्विक) अहंका कार्य न मानकर तैजस (राजस) अहंका कार्य माना गया है और मनको वैकारिक अहंका। प्रायः मन, बुद्धि, चित्त, अहं, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चप्राणरूप करणात्मक सूक्ष्म शरीरको सांख्यशैलीमें आहङ्कारिक और अभौतिक ही माना गया है। मनसहित १० देवोंको सात्त्विक अहंका, १० इन्द्रिय, ५ प्राणसहित बुद्धिको तैजस अहंका कार्य स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके छब्बीसवें अध्यायमें तामस अहंसे शब्द, शब्दतन्मात्रसे आकाश और श्रोत्र, आकाशसे स्पर्श, स्पर्शसे वायु और त्वक्, वायुसे रूप, रूपसे तेज और नेत्र, तेजसे रस, रससे जल और रसन, जलसे गन्ध, गन्धसे पृथ्वी और घ्राणकी अभिव्यक्ति दर्शायी गयी है। इस प्रकार इन्द्रियोंकी भौतिकता, अभौतिकता दोनों प्रसङ्गानुसार मान ली गयी हैं।

पुराणोंमें परमाणु और आरम्भवादके प्रति आदर नहीं है। उनमें आद्योपान्त ब्रह्माश्रित प्रधान और विवर्तवादका ही समादर है। पूर्वमीमांसाकी शैलीमें याग, होमादिका वर्णन होनेपर भी देवताधिकरणन्यायसे स्वर्ग और स्वर्गीय पदार्थोंको जहाँ साकार माना गया है, वहाँ—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८।४६)

—की शैलीमें सर्वकारण भगवदर्थ ही सर्वकर्मोंके अनुष्ठानको महत्त्व दिया गया है। भागवतधर्मका उत्कर्ष—नाम-माहात्म्य, कर्मसमर्पण, कथाश्रवणादिके व्याजसे पुराणोंमें अवश्य ही परिलक्षित होता है, परंतु सर्वसामान्यके लिये वर्णाश्रमधर्मका त्याग विहित नहीं माना जा सकता। कथा-श्रवणादिमें रति अथवा भवबन्धनसे विरति हुए बिना वर्णाश्रमधर्मका त्याग पतनमें हेतु है—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥
स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव।
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यत्र समाचरेत्॥
अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया॥

(श्रीमद्भा० ११।२०।९-११)

पुराणोंमें बहुदेवत्ववादमें एकत्व—प्रायः श्रीगणेश, सूर्य, शक्ति, विष्णु और शिव—इन पञ्चदेवोंमें प्रधान-भेदसे जहाँ

उत्कर्षापकर्ष परिलक्षित होता है, वहाँ विष्णु आदि पञ्चदेवोंकी अपेक्षा रामका, रामकी अपेक्षा कृष्णका उत्कर्ष भी परिलक्षित होता है। यही कारण है कि पुराण-शैलीसे अनभिज्ञ महानुभाव अष्टादशपुराण और पुराण-शैलीमें ग्रथित रामचरितमानसादि ग्रन्थोंको पढ़-सुनकर भ्रमित हो जाते हैं। इस भ्रमके निराकरणमें **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** (ऋ० सं० १।१६४।४६) कहकर श्रुतिने यह तथ्य प्रकाशित किया है कि वेद-शास्त्र-सम्मत शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश, सूर्य, वरुण आदि रूपसे स्वप्रकाश ब्रह्म ही सर्वत्र पूज्य होता है। लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यका नियम प्रसिद्ध ही है। **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** (तैत्ति० ३।१) **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म०'** (तै० २।१), **'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'** (बृहदारण्यक ३।९।२८) आदि वचनोंके अनुसार ब्रह्मके स्वरूप और तटस्थलक्षण, जिसमें अभिधा और लक्षणावृत्तिसे चरितार्थ हो, वह वेदान्तवेद्य परब्रह्म तत्पदार्थका पुञ्जीभूत सारसर्वस्व ही है। **'न हि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु विधेयं स्तोतुम्'**—निन्दा निन्दनीयकी निन्दामें विनियुक्त नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिमें चरितार्थ होती है। इस न्यायसे निन्दाका परिहार (निवारण) कर लेना चाहिये। शिवपुराणके शिव, विष्णुपुराणके विष्णु, वाल्मीकिरामायणके राम, भागवतके कृष्ण, देवीभागवतकी दुर्गा (शक्ति) में वस्तुतः कोई तात्त्विक भेद नहीं है। परम्पराप्राप्त आस्था, आराधना, अभिरुचिके अनुरूप एकमें इष्टबुद्धि होनेपर भी अन्योंमें हेयबुद्धि न कर उन्हें इष्टाराधनमें सहयोगी मानकर उनके प्रति भी प्रीति अपेक्षित है। इस संदर्भमें स्कन्दोपनिषद् (८।९) में कहा गया है—

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः॥
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि॥

उपासकोंको स्मरण रखना चाहिये कि 'चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल, अशरीरी, परमात्माके विविध रूपोंकी कल्पना (भावना) उपासकोंकी कार्यसिद्धि (भुक्ति, भक्ति और मुक्तिरूप प्रयोजनोंकी सिद्धि) के अभिप्रायसे है। एक ही मणिनील-पीतादिसे युक्त होनेपर जैसे रूपभेदको प्राप्त होती है, वैसे ही ध्यान-भेदसे श्रीहरिमें विविधता परिलक्षित होती है।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।७)

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात् तथाच्युतः॥

(नारदपाञ्चरात्र)

इसी प्रकार **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** (श्रीमद्भा० १।३।२८) के अनुसार जिस 'स्वयं' शब्दके बलपर परमानन्दकन्द सुधा-सिन्धु श्रीकृष्णचन्द्रको अवतारी-अंशी और श्रीरामादिको अंश-अवतार माननेकी भावना प्रशस्त है, **'स्वयं प्रभुः'** (श्रीमद्वाल्मीकिरामायण ६।११७।१८), **'प्रभोः प्रभुः'** (श्रीमद्वाल्मीकिरामायण २।४४।१५)—इन वचनोंके अनुसार उसी 'स्वयं' शब्दके बलपर श्रीरामादिका चरमोत्कर्ष भी मान्य है। लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यके बलपर श्रीराम और श्रीकृष्णकी एकरूपता सिद्ध हो जाती है। पञ्चदशीमें 'स्वयं' शब्द प्रत्यगात्माके लिये प्रयुक्त है—**'स्वयमात्मेति पर्यायौ'** (पञ्च० ६।४३), **'स्वयंशब्दार्थ एवैष कूटस्थः'** (६।४१), इस दृष्टिसे इष्टकी आत्मरूपता भी सिद्ध हो जाती है।

साथ ही कलाके न्यून और अधिक होनेमें प्रस्तार (प्रसार) और अन्तर्भाव नियामक होता है, कलाभेद पुरुष-भेदमें नियामक नहीं होता। कठोपनिषद् (१।३।१०-११) के अनुसार अक्षर, प्राण, मन, इन्द्रिय, आकाश, वायु, ज्योति, ये पुरुषकी ६ कलाएँ सिद्ध होती हैं। मुण्डक (२।१।२-३) के अनुसार अक्षर, प्राण, मन, इन्द्रिय आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी—ये पुरुषकी ९ कलाएँ हैं। प्रश्न (६।४) के अनुसार प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम—ये पुरुषकी १६ कलाएँ सिद्ध होती हैं। परंतु इन कलाओंमें श्रीमद्भागवत (११।२२) के अनुसार समास-व्यास (फैलाव और अन्तर्भाव) की दृष्टिसे संकोच-विकास (न्यूनाधिकभाव) होनेपर भी पुरुष (परमपुरुष पुरुषोत्तम) में किसी प्रकारका न्यूनाधिक भाव सिद्ध नहीं होता। यदि ऐसा न होता तो षट्कलासम्पन्न पुरुषके लिये श्रुति **'पुरुषान्न परं**

किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः' (कठ० १ । ३ । ११) और ९ कलासम्पन्न पुरुषके लिये '**दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥**' (मुण्डक० २ । १ । २) ऐसा नहीं कहती।

साथ ही मर्यादापुरुषोत्तम (श्रीराम) के द्वारा लीला और विक्रम-विशेषकी तथा लीलापुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) के द्वारा मर्यादा और विक्रमविशेषकी एवं विक्रम—पुरुषोत्तम (श्रीवामन) द्वारा मर्यादा और लीलाविशेषकी अनभिव्यक्ति-के आधारपर इनमें उत्कर्षापकर्ष ख्यापित करना भी उपयुक्त नहीं। गायक, नर्तक, क्रीडक (खिलाड़ी) देवदत्तके द्वारा युगपत् गान, नृत्य और क्रीडाकी अनभिव्यक्ति जिस प्रकार उसे अगायक, अनर्तक या अक्रीडक सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है, उसी प्रकार प्रकृत प्रसङ्गमें भी समझना चाहिये।

पुराणोंकी महत्ता

'पुराण' वेदसार-सर्वस्व ही हैं। ब्राह्मणभाग विधिप्रधान, धर्मशास्त्र विधानप्रधान और पुराण-प्रक्रिया प्रयोग और उदाहरण - प्रधान हैं। उदाहरणार्थ '**सत्यं वद**' (तैत्ति० १ । ११ । १) की प्रक्रिया, प्रयोगपद्धति और उसके उदाहरण हरिश्चन्द्र, बलिके जीवनमें चरितार्थ होते हैं। '**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**' (तै० १ । ११ । १) के आदर्श पौराणिक भरद्वाज हैं। '**आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः**' (तै० १ । ११ । १) '**आचार्यदेवो भव**' (तै० १ । ११ । २) के आदर्श आरुणि, उपमन्यु, वेद, उत्तङ्क, कौत्सप्रभृति हैं। इसी प्रकार '**मातृदेवो भव**', '**पितृदेवो भव**', '**अतिथिदेवो भव**' (तै० १ । ११ । २) तथा महाभारत (अनु० २ । ५२) के आदर्श भीष्म, धर्मव्याध, सुदर्शन आदि हैं।

इसी प्रकार योगदर्शनके अष्टाङ्गयोगमें प्रत्येक अङ्ग और उपाङ्गोंके प्रयोग, प्रक्रिया, फल तथा उदाहरणका परिज्ञान पुराणोंके अनुशीलनसे होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, भगवद्भक्तिरूप पाँचों पुरुषार्थोंकी सिद्धि पुराणोंके श्रवण, मनन और अनुशीलनसे सम्भव है; क्योंकि विविध तन्त्रों, नीतिशास्त्रों और काव्योंके उद्गमस्थान और उपजीव्य अष्टादश पुराण ही हैं। इतना ही नहीं वेदाङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, छन्दका परिज्ञान अग्नि आदि पुराणोंके अनुशीलनसे होता है। समस्त विद्यानिधि पुराण और पुराण-पुरुषको नमस्कार है।

परोपकारव्रती शबर पिङ्गाक्षको दिक्पालपदकी प्राप्ति*

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

किसी समय विन्ध्याटवीमें पिङ्गाक्ष नामक भीलोंका एक मुखिया निवास करता था। वह जातिसे ब्राह्मण था, पर बचपनसे ही संसर्गदोषके कारण शबरधर्मा और आरण्यक हो गया था। वह जिनके बीच रहता था, वे सभी दस्यु और हिंसकवृत्तिसे अपनी जीविका चलाते थे। पिङ्गाक्ष अपने पराक्रमसे इन सबका सरदार अवश्य हो गया, किंतु उसमें ब्राह्मणत्वकी आभा पूर्णतया निःशेष नहीं हुई थी। आखेट ही उसकी भी जीविका थी, किंतु उसमें भी उसने कुछ नियम बना रखे थे। वह अरण्यमार्गसे होकर आने-जानेवाले पथिकोंको उत्पीड़ित करनेवाले व्याघ्र आदि क्रूर पशुओंको ही मारता था तथा उन्हींका चर्म आदि बेचकर और वन्य कन्द-मूलोंका आश्रय लेकर अपने परिवारका भरण-पोषण करता था। व्याध होकर भी वह क्रूरधर्मपराङ्मुख तथा दयालु था। वह सोये हुए, विश्वासमें आकर निर्भय विचरनेवाले, तृषित, जलान्वेषण करनेवाले तथा शिशु पशुओंपर शस्त्र नहीं उठाता था।

अपने जाति-भाइयोंके विपरीत वह थके हुए राहगीरोंको अपने उटजमें विश्राम तथा वन्य कन्दोंका भोजन देकर सत्कृत करता था और उनमें जिनके वस्त्र या जूते नहीं होते, उन्हें यथासम्भव वस्त्रादि भी देता एवं गहन वनमें अन्य लुटेरोंसे उनकी रक्षा करता हुआ सही मार्गतक पहुँचा देता था।

एक कुशल योद्धाके रूपमें उसकी ख्याति थी, अतएव विपरीतधर्मा होनेपर भी सभी शबर उससे भय मानते तथा उसका नाम बतलानेवाले पथिकोंको छोड़ देते थे। एक प्रकारसे सम्पूर्ण विन्ध्याटवीमें उसका कड़ा अनुशासन था। उसके रहनेसे विन्ध्याटवीका दुर्गम मार्ग अब सौदागरोंके लिये भी सुगम हो गया था। पिङ्गाक्षके इस आचरणसे विन्ध्याटवी-

* यही कथा स्कन्दपुराणके काशीखण्डके बारहवें अध्यायके आदिमें भी आती है।

के सभी शबर रुष्ट थे।

एक दिन समीपकी पल्लीमें निवास करनेवाला एक दस्यु, जो सांसर्गिक सम्बन्धसे पिङ्गाक्षका चाचा लगता था, अपने अनेक साथियोंको लेकर एक सौदागरके पीछे दौड़ा और उसे लूटने लगा। सौदागरके सैनिकों तथा दस्यु भीलोंमें संघर्ष होने लगा। बेचारे वणिक् लोग पराजित होकर प्राण बचाकर भागने लगे। पिङ्गाक्षके द्वारा आश्वस्त रहनेके कारण उनके सैनिकोंकी संख्या अत्यल्प थी और वे सब भी असावधान थे, अतः इस आकस्मिक आक्रमणको नहीं सह सके। उन्होंने भागकर पिङ्गाक्षकी शरण ली। पिङ्गाक्ष यह आर्तपुकार सुनकर एकाकी ही उन सबकी रक्षा करनेके लिये दौड़ पड़ा। दस्यु शबर पिङ्गाक्षका विरोध करनेके लिये पहलेसे ही कृतसंकल्प और संनद्ध थे, अतएव उन्होंने पिङ्गाक्षपर घातक प्रहार करना आरम्भ कर दिया। पिङ्गाक्ष अपने शरीरकी चिन्ता न करते हुए राहगीरोंको निकल जानेका अवसर देता रहा। उसके पराक्रमसे प्रायः सभी पान्थ उसे आशीर्वाद देते हुए सकुशल निकल भागे, किंतु अनेकके बीच सम्मुख युद्ध करता हुआ वह परोपकारी पल्लीपति पिङ्गाक्ष वीरगतिको प्राप्त हुआ।

दूसरोंके लिये प्राणोंका विसर्जन करनेवाला यही पिङ्गाक्ष मृत्युके पश्चात् नैर्ऋत्यकोणका दिक्पाल 'निर्ऋति' नामक देवता हुआ[1]।

(पद्म॰, स्वर्ग॰, अ॰ ९)

भ्रामरी देवी एवं अरुण दानवकी कथा

प्राचीन कालमें अरुण नामका एक महान् पराक्रमी देवद्वेषी दैत्य हुआ था, जो पातालमें रहता था। एक बार उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी, अतः वह हिमालयपर जाकर पद्मयोनि ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। उसने चित्त शान्त करके आसन जमाकर श्वास रोक लिया। भूख लगनेपर वह कभी सूखे पत्ते खा लिया करता था। इस प्रकार वह तामसिक कामनासे तप करने लगा। उसकी तपस्या इसी क्रमसे दस हजार वर्षोंतक चलती रही। इसके बाद उसने दस हजार वर्षोंतक मात्र थोड़ा-सा जल पीकर तप किया। तदनन्तर उसके दस हजार वर्ष केवल वायुके आहारपर ही बीते। तत्पश्चात् उसने दस हजार वर्षोंतक बिलकुल निराहार रहकर तप किया। इस प्रकार घोर तपस्या करनेपर उसके शरीरसे एक प्रचण्ड अग्नि निकली, जो सम्पूर्ण जगत्को दग्ध करने लगी। इस अद्भुत घटनाको देखकर 'यह क्या ? यह क्या ?' कहकर सम्पूर्ण देवता काँप उठे। सभी प्राणियोंके हृदयमें आतंक छा गया। तब सभी प्रधान देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्हें इस बातकी सूचना दी। देवताओंकी बात सुनकर चतुर्मुख ब्रह्मा गायत्री देवीके साथ हंसपर आरूढ होकर उसके पास पहुँचे।

उस समय दैत्येन्द्र अरुणके सैकड़ों नाड़ियोंसे संयुक्त शरीरमें केवल प्राणमात्र ही अवशेष थे। वह नेत्रोंको बंद किये हुए ध्यानमें लीन था। तेजसे वह ऐसा दिखायी पड़ता था, मानो कोई दूसरा प्रचण्ड अग्नि हो। उसे देखकर प्रसन्नहृदय भगवान् ब्रह्माने उससे कहा—'वत्स ! तुम्हारे मनमें जो कुछ भी कामना हो, वह मुझसे माँग लो।' ब्रह्माजीकी अमृतमयी वाणी सुनते ही अरुणका मन संतुष्ट हो गया। उसने आँखें खोलीं तो उसे सामने कमलोद्भव ब्रह्माजीके दर्शन हुए। चारों वेदोंसे सम्पन्न महाभाग ब्रह्मा गायत्रीदेवीके साथ हंसपर विराजमान थे। वे हाथमें अक्षमाला एवं कुण्डिका लेकर अविनाशी ब्रह्म-प्रणवका जप कर रहे थे। उन्हें देखकर अरुणने उनके चरणोंमें प्रणाम करके अनेक स्तोत्रोंके द्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उसने अपने अभीष्ट वरकी याचना करते हुए कहा— 'पितामह ! मेरी कभी भी मृत्यु न हो।'

अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने आदरपूर्वक उसे समझाते हुए कहा—'संसारमें जन्म लेनेवाले प्रत्येक प्राणीकी मृत्यु निश्चित है। अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो।' तब कुछ देरतक विचार करके अरुणने कहा—'प्रभो ! मुझे आप यह वर देनेकी कृपा करें कि मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और न दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे मार सके। साथ ही आप मुझे ऐसा विपुल बल दीजिये, जिससे मैं

[1] १-इति प्राणान् विसृज्यासौ परार्थे रणमूर्धनि। दिक्पालत्वं गतः सोऽसौ नैर्ऋत्यां नैर्ऋतेश्वरः॥ (पद्म॰ स्वर्ग॰ ९।४३)

सम्पूर्ण देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।' 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोक चले गये।

तदनन्तर अरुणने अपने स्थानपर रहनेवाले सभी दैत्योंको पातालसे बुला लिया। वे सभी असुर आकर उस बलाभिमानी दानवके आज्ञाकारी बन गये। फिर उसने युद्ध करनेके अभिप्रायसे अपने दूतको अमरावती भेजा। उस समय उस दूतकी बात सुनकर देवराज इन्द्र भयसे काँपने लगे। अभी देवगण राक्षसोंके वधकी बात सोच ही रहे थे कि इतनेमें दैत्यराज अरुण अपनी दानवी सेनासे सुसज्जित हो स्वर्ग जा पहुँचा और उसने बात-की-बातमें समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। इतना ही नहीं, उस राक्षसराजने अपनी तपस्याके प्रभावसे अपने अनेक रूप बना लिये। वह सूर्य, चन्द्रमा, यम तथा अग्निके समस्त अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने हाथमें लेकर स्वयं सबका शासन करने लगा।

इसके बाद अपने-अपने स्थानसे च्युत एवं दीन बने हुए सभी देवताओंने कैलास जाकर जब एक-एक करके भगवान् शंकरको अपनी दुःखगाथा सुनायी, तब करुणासे द्रवित हो भगवान् सदाशिव 'विकट वरकी प्राप्तिसे बढ़े हुए बलवाले इस दानवकी किस प्रकार मृत्यु हो सकती है?' विचार करने लगे। ठीक उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो। वे ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेंगी। यदि दानवराज अरुण गायत्रीके जपसे पृथक् हो जाय तो उसकी मृत्युके योग्य परिस्थिति बन सकती है।'

इस दिव्य आकाशवाणीको सुनकर देवताओंने बृहस्पतिजीके पास जाकर उनसे कहा—'गुरो! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये दानवराज अरुणके पास जाइये और जिस किसी भी प्रकारसे वह गायत्री-जपसे विरत हो सके, वैसा ही प्रयत्न कीजिये। हमलोग भी मनोयोगपूर्वक भगवती परमेश्वरीकी उपासनामें लगते हैं।' बृहस्पतिजीसे इस प्रकार कहकर सभी देवता भगवती जाम्बूनदेश्वरीके पास जानेके लिये तैयार हो गये। उनका उद्देश्य था कि 'वे परम सुन्दरी देवी दैत्यके भयसे घबराये हुए हम देवताओंकी रक्षा करें।' वे वहाँ जाकर सुनिष्ठित चित्तसे तपस्या करने लगे। माया-बीजका जप करते हुए वे तन-मनसे देवी-यज्ञमें तत्पर हो गये। इधर परमवाग्मी बृहस्पतिजी शीघ्र ही दानवराज अरुणके पास जा पहुँचे। सामने आये हुए उन मुनिवरसे दैत्यने पूछा—'मुने! आप कहाँसे आ गये? आपके आनेका क्या प्रयोजन है? शीघ्र बताइये। मैं आपका पक्षपाती तो हूँ नहीं, प्रत्युत आपके प्रति मेरी शत्रुता ही रहती है।' अरुणकी बात सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'दानवेन्द्र! हम जिन देवीकी उपासंना करते हैं, तुम भी निरन्तर उन्हींकी उपासना करते हो। अतएव तुम तो हमारे पक्षपाती हो ही गये।' यह सुनकर देवमायासे मोहित हो अभिमानमें आकर अरुणने कहा—'अच्छा, अब मैं गायत्रीकी उपासना नहीं करूँगा'—यह कहकर वह दैत्य गायत्रीके जपसे विरत हो गया। इस जपका त्याग करते ही उसका शरीर सत्त्वरहित एवं निस्तेज हो गया।

इस प्रकार अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करके बृहस्पतिजी वहाँसे अमरावती लौट आये। उनसे सब समाचार जानकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे सतत भगवती आदिशक्तिकी आराधनामें संलग्न हो गये। इस तरह बहुत काल व्यतीत होनेपर एक दिन शुभ अवसरपर जगत्का कल्याण करनेवाली भगवती जगदम्बा उन देवताओंके सम्मुख प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। दिव्यालंकारभूषित उन सर्वज्ञा जगज्जननीकी मुट्ठी अद्भुत भ्रमरोंसे भरी हुई थी। वे चारों ओरसे असंख्य विचित्र भ्रमरोंके द्वारा घिरी हुई थीं। उनके पार्श्ववर्ती भ्रमर असंख्य थे और वे सब 'ह्रीं'-शब्दका गायन कर रहे थे। उन शक्तिस्वरूपिणी भगवती भ्रामरीका दर्शन प्राप्त करके ब्रह्मा आदि समस्त देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। देवताओंने कहा—'जो भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण 'भ्रामरी' नामसे प्रसिद्ध हैं, उन आप भगवतीको हम नित्य अनेकशः प्रणाम करते हैं। जगदम्बिके! आप अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी हैं, आपकी जय हो। परमेश्वरी! आप प्रसन्न होइये। संसारको उत्पन्न करनेवाली आप हम देवताओंपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें।' देवताओंद्वारा प्रेमपूर्वक की गयी स्तुतिको सुनकर भगवती जगदम्बाने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'देवगण! मैं तुमपर सदाके लिये प्रसन्न हूँ। वर देना मेरा स्वाभाविक गुण है। अतः तुम सबके मनमें जो भी अभिलषित हो, वह वर मुझसे माँग लो।' यह सुनकर प्रसन्न

एवं आश्वस्त हुए देवताओंने अपने दुःखका कारण बतला कर अरुण दैत्यके द्वारा जगत्‌को प्राप्त होनेवाली असह्य पीड़ाका वर्णन करते हुए कहा—'मातः ! इस समय देवताओं, ब्राह्मणों और वेदोंकी सर्वत्र निन्दा हो रही है तथा उनपर आघात पहुँचा हुआ है। सभी देवता अपने-अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं। ब्रह्माजीने दानवराज अरुणको विचित्र वर दे रखा है।'

देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवती महादेवी भ्रामरीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको प्रेरित किया, उन्हींके साथ ही अपने पार्श्वप्रान्त और अग्रभागमें रहनेवाले नाना रूपधारी भ्रमरोंको भी भेजा। उन्होंने और भी असंख्य भ्रमरोंको उत्पन्न किया। उन भ्रमरोंसे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी और पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। आकाश, पर्वत-शृङ्ग, वृक्ष और वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। यह दृश्य बड़ा ही आश्चर्यजनक था। उन भ्रमरोंने तुरंत जाकर राक्षसराज अरुण एवं अन्य दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे उन्हें इस प्रकार काट रहे थे, जैसे मधु निकालनेवाले व्यक्तिको क्रोधमें भरी हुई मधुमक्खियाँ काटती हैं। उस समय शस्त्रास्त्रोंसे किसी प्रकार भी उनका निवारण नहीं किया जा सकता था। ऐसी स्थितिमें न तो युद्ध हो सका और न कोई सम्भाषण ही। दैत्योंको अपने सामने मृत्यु ही दृष्टिगोचर होती थी। जिस-जिस स्थलपर जो-जो दैत्य जिस-जिस रूपमें विद्यमान थे, वहीं-वहीं, उसी-उसी रूपमें वे सब अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। इस प्रकार क्षणमात्रमें ही त्रिलोकीके कण्टकभूत सम्पूर्ण शक्तिशाली दानव नष्ट हो गये। ऐसा अद्‌भुत कार्य करके वे सभी भ्रमर देवीके निकट लौट आये।

तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंने हर्ष-गद्‌गद होकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे देवीकी स्तुति की। उस समय देवीके ऊपर पुष्प-वर्षा होने लगी तथा श्रेष्ठ मुनिगण वेद-पाठ करने लगे। तब भगवती महादेवी संतुष्ट होकर सभी देवताओंको पृथक्-पृथक् वर प्रदान कर अन्तर्धान हो गयीं। देवीके माहात्म्यसे समन्वित यह विषय पढ़ने और सुनने-वालोंके लिये कल्याणप्रद है। जो पुरुष नित्य इस प्रसंगका पठन एवं श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवतीके परमपदको प्राप्त कर लेता है। (देवीभा० १०-१३)

धर्मकी श्रेष्ठता

एको मुख्यो महाधर्मो निधनेष्वनुयाति यः। सर्वमन्यच्छरीरोपभोग्यं नाशं प्रयाति च ॥
विनयोष्णीषमुकुटः सत्यधर्मौ च कुण्डले। त्यागश्च कङ्कणे येषां किं तेषां जडमण्डनैः ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य लोष्टकाष्ठसमं भुवि। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥
परित्यजेदर्थकामौ स्यातां चेद्धर्मवर्जितौ। धर्मेण प्राप्यते सर्वमर्थकामादिकं सुखम् ॥
धर्म एव ततः श्रेयान् विधिना समनुष्ठितः। धैर्यमालम्ब्य च ततो धर्ममेव समाचर ॥
श्वास एष चपलः क्षणमध्ये यो गतागतशतानि विधत्ते।
जीवितेऽपि तदधीनचेतसा कः समाचरति धर्मविलम्बम् ॥

(पद्म०, पाताल०, अध्याय ९०)

एकमात्र धर्म ही सबसे महान् और श्रेष्ठ है, जो मृत्युके बाद भी साथ जाता है। शरीरके उपभोगमें आनेवाली अन्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब नष्ट हो जाती हैं। जिनके लिये विनय ही पगड़ी-रूपमें मुकुट है, सत्य और धर्म ही कुण्डल हैं तथा त्याग ही कङ्कण है, उन्हें जड आभूषणोंकी क्या आवश्यकता है ? मनुष्यके मरे हुए शरीरको ढेले और काठके समान पृथ्वीपर फेंककर उसके बन्धु-बान्धव विमुख होकर चल देते हैं, केवल धर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता है। अर्थ और काम भी यदि धर्मसे रहित हों तो उन्हें त्याग देना चाहिये; क्योंकि धर्मसे अर्थ-काम आदि सभी सुख प्राप्त हो जाते हैं। अतः विधिपूर्वक पालन किया हुआ धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये धैर्यका आश्रय लेकर धर्मका ही आचरण करना चाहिये। यह चञ्चल श्वास क्षणभरमें सैकड़ों बार आता-जाता है, जीवन उसीके अधीन है, ऐसे क्षणिक जीवनमें आसक्तचित्त होकर धर्ममें विलम्ब कौन करेगा ?

भगवती मनसादेवीका उपाख्यान एवं पूजा-विधान*

प्राचीन समयकी बात है। भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। नाग जिन्हें काट खाते, वे जीवित नहीं बचते थे। यह देख-सुनकर कश्यपजी भी भयभीत हो गये, अतः ब्रह्माजीके अनुरोधसे उन्होंने सर्पभय-निवारक मन्त्रोंकी रचना की। ब्रह्माजीके उपदेशसे वेदबीजके अनुसार मन्त्रोंकी रचना हुई। साथ ही ब्रह्माजीने अपने मनसे उत्पन्न करके इन मनसादेवीको इस मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी बना दिया। तपस्या तथा मनसे प्रकट होनेके कारण ये देवी 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं। कुमारी-अवस्थामें ही ये भगवान् शंकरके धाममें चली गयीं। कैलासपर जाकर इन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान् चन्द्रशेखरकी पूजा करके उनकी स्तुति की। मुनि-कुमारी मनसाने देवताओंके वर्षसे हजार वर्षोंतक भगवान् शंकरकी उपासना की। तदनन्तर भगवान् आशुतोष इनपर प्रसन्न हो गये। भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर इन्हें महान् ज्ञान प्रदान किया, सभी शास्त्रोंका अध्ययन कराया और भगवान् श्रीकृष्णके कल्पवृक्षरूप अष्टाक्षर मन्त्रका उपदेश किया।

मन्त्रका रूप ऐसा है—लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके 'कृष्ण' शब्दके अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगाकर 'नमः' पद जोड़ दिया जाता है **(श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः)**। भगवान् शंकरकी कृपासे जब मुनिकुमारी मनसाको उक्त मन्त्रके साथ त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच, पूजनका क्रम, सर्वमान्य स्तवन, भुवनपावन-ध्यान, सर्वसम्मत वेदोक्त पुरश्चरणका नियम तथा मृत्युञ्जयज्ञान प्राप्त हो गया, तब वह साध्वी उनसे आज्ञा लेकर पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करनेके लिये चली गयी। वहाँ जाकर उसने परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तीन युगोंतक उपासना की। इसके बाद उसे तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने सामने प्रकट होकर उसे दर्शन दिया। उस समय कृपानिधि श्रीकृष्णने उस कृशाङ्गी बालापर अपनी कृपा-दृष्टि डाली। उन्होंने उसका दूसरोंसे पूजन कराया और स्वयं भी उसकी पूजा की, साथ ही वर दिया कि 'देवि ! तुम जगत्में पूजा प्राप्त करो।' इस प्रकार कल्याणी मनसाको वर प्रदान करके भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इस तरह इस मनसादेवीकी सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने पूजा की। तत्पश्चात् शंकर, कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिद्वारा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाली यह देवी सुपूजित हुई। फिर कश्यपजीने जरत्कारु मुनिके साथ उसका विवाह कर दिया। वे मुनि महान् योगी थे। विवाह करनेके पश्चात् तपस्यामें संलग्न हो गये। एक दिन पुष्करक्षेत्रमें वटवृक्षके नीचे वे जरत्कारु मुनि देवीकी जाँघपर लेट गये और उन्हें नींद आ गयी। इतनेमें सायंकाल होनेको आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थी। उसने मनमें विचार किया—'द्विजोंके लिये नित्य सायंकाल संध्या करनेका विधान है। यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा, क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकालकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है।' यों विचार करके उस परम सुन्दरी मनसाने पतिदेवको जगा दिया। मुनिवर जरत्कारु जगनेपर क्रोधसे भर गये।

मुनिने कहा—'साध्वि ! मै सुखपूर्वक सो रहा था, तुमने मेरी निद्रा क्यों भङ्ग कर दी ? जो स्त्री अपने स्वामीका अपकार करती है, उसके व्रत, तपस्या, उपवास और दान आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। स्वामीका अप्रिय करनेवाली स्त्री किसी भी सत्कर्मका फल नहीं प्राप्त कर सकती। जिसने अपने पतिकी पूजा की, उससे मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सुपूजित हो गये। पतिव्रताओंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि पतिके रूपमें विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और देवपूजन—ये सब-के-सब स्वामीकी सेवाकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते। जो स्त्री भारतवर्ष-जैसे पुण्यक्षेत्रमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है। साध्वि ! जो असत्कुलमें

* यह कथा महाभारतके आदिपर्वमें भी आती है और उसमें मनसाका नाम भी जरत्कारु है। पति-पत्नी दोनोंका नाम एक ही था। यह कथा देवीभागवतमें भी है, जो अधिकांशरूपमें महाभारतसे मिलती है।

उत्पन्न स्त्री अपने स्वामीके प्रतिकूल आचरण करती तथा उसके प्रति कटु वचन बोलती है, वह सूर्य और चन्द्रमाकी आयुपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें वास करती है। तदनन्तर चाण्डालके घरमें उसका जन्म होता है और पति एवं पुत्रके सुखसे वह वञ्चित रहती है।' यों कहकर वे चुप हो गये। तब साध्वी मनसा भयसे काँपने लगी। उसने पतिदेवसे कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग! आपकी संध्योपासनाका लोप न हो जाय, इसी भयसे मैंने आपको जगा दिया है—यह मेरा दोष अवश्य है।'

इस प्रकार कहकर देवी मनसा भक्तिपूर्वक अपने स्वामी जरत्कारु मुनिके चरण-कमलोंमें पड़ गयी। उस समय रोषके आवेशमें आकर मुनि सूर्यको भी शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। उन्हें शापोद्यत देखकर स्वयं भगवान् सूर्य संध्यादेवीको साथ लेकर वहाँ आये और भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिवर जरत्कारुसे सम्यक् प्रकारसे यथार्थ बात कहने लगे—'भगवन्! आप परम शक्तिशाली ब्राह्मण हैं। संध्याका समय देखकर धर्मलोप हो जानेके भयसे इस साध्वीने आपको जगा दिया। मुने! विप्रवर! मैं आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय सदा नवनीतके समान कोमल होता है। ब्राह्मण चाहें तो पुनः सृष्टि कर सकते हैं, इनसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई है ही नहीं। ब्रह्मज्योति ब्राह्मणके द्वारा निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना होती है।'

सूर्यके उपर्युक्त वचन सुनकर विप्रवर जरत्कारु प्रसन्न हो गये। उनसे आशीर्वाद लेकर सूर्य अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन ब्राह्मणदेवताने देवी मनसाका त्याग कर दिया। उस समय देवीके शोककी सीमा नहीं रही। दुःखके कारण उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा था। वे रो रही थीं। उस विपत्तिके अवसरपर भयसे व्याकुल होकर उस देवीने अपने गुरुदेव शंकर, इष्टदेवता ब्रह्मा और श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया। देवी मनसाके चिन्तन करनेपर तुरंत गोपीश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यप मुनि वहाँ आ गये। प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण मुनिवर जरत्कारुके अभीष्ट देवता थे। उनके दर्शन पाकर परम भक्तिके साथ मुनि बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने भगवान् शंकर, ब्रह्मा और कश्यपको भी नमस्कार किया तथा इस प्रकार पूछा—'महाभाग देवताओ! आप लोगोंका यहाँ कैसे पधारना हुआ है?'

मुनिवर जरत्कारुकी बात सुनकर ब्रह्माजीने समयोचित बातें कहीं। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके उन्होंने मुनिको उत्तर दिया—'मुने! तुम्हारी यह धर्मपत्नी मनसा परम साध्वी एवं धर्ममें आस्था रखनेवाली है। यदि तुम इसे त्यागना चाहते हो तो पहले इसे किसी संतानकी जननी बना दो, जिससे यह अपने धर्मका पालन कर सके। जो पुरुष पुत्रोत्पत्ति कराये बिना ही प्रिय पत्नीका त्याग कर देता है, उसका पुण्य चलनीसे बह जानेवाले जलकी भाँति साथ छोड़ देता है।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर मुनिवर जरत्कारुने मन्त्र पढ़कर योगबलका सहारा ले देवी मनसाकी नाभिका स्पर्श किया और उससे कहा—'मनसे! इस गर्भसे तुम्हें पुत्र होगा। वह पुत्र जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्रह्मज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणी, वेदवेत्ताओं, ज्ञानियों और योगियोंमें प्रमुख, विष्णुभक्त तथा अपने कुलका उद्धारक होगा। ऐसे सुयोग्य पुत्रके उत्पन्न होनेमात्रसे पितर आनन्दमें भरकर नाचने लगते हैं। जो पातिव्रतधर्मका पालन करती है, प्रिय बोलती है और सुशीला है, वह 'प्रिया' है। जो धर्ममें श्रद्धा रखती है, पुत्र उत्पन्न करती है तथा कुलकी रक्षा करती है, उसीको 'कुलीन स्त्री' कहते हैं। जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करता है एवं अभीष्ट सुख देनेमें तत्पर रहता है, वही 'बन्धु' है। यदि भगवान् श्रीहरिके मार्गका प्रदर्शक हो तो उस बन्धुको पिता भी कह सकते हैं। वही 'गर्भधारिणी' स्त्री कहलाती है, जो ज्ञानोपदेशद्वारा संतानको गर्भवाससे मुक्त कर दे। 'दयारूपा भगिनी' उसे कहते हैं, जिसकी कृपासे प्राणी यमराजके भयसे मुक्त हो जाय। भगवान् विष्णुके मन्त्रको प्रदान करनेवाला गुरु वही है, जो भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करा दे। ज्ञानदाता गुरु उसीको कहते हैं, जिसकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनकी योग्यता प्राप्त हो जाय; क्योंकि ब्रह्मपर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता और नष्ट हो जाता है।

वेद अथवा यज्ञसे जो कुछ सारतत्त्व निकलता है, वह यही है कि भगवान् श्रीहरिका सेवन किया जाय। यही तत्त्वोंका

भी तत्त्व है। भगवान् श्रीहरिकी उपासनाके अतिरिक्त सब कुछ केवल विडम्बनामात्र है। मैंने तुम्हें यथार्थ ज्ञानोपदेश कर दिया; क्योंकि स्वामी भी वही कहलाता है, जो ज्ञान प्रदान कर दे। ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त करनेवाला 'स्वामी' माना जाता है और वही यदि बन्धनमें डालता है तो 'शत्रु' है। जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, उसे 'शिष्यघाती' कहते हैं; क्योंकि वह शिष्यको बन्धनमुक्त नहीं कर सका। जो जननीके गर्भमें रहनेके क्लेशसे तथा यमयातनासे मुक्त नहीं कर सकता, उसे गुरु, तात और बान्धव कैसे कहा जाय! भगवान् श्रीकृष्णका सनातन मार्ग परमानन्द-स्वरूप है। जो निरन्तर ऐसे मार्गका प्रदर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है ? अतः साध्वि ! तुम निर्गुण एवं अच्युत ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करो, इनकी उपासनासे पुरुषोंके सारे कर्ममूल कट जाते हैं। प्रिये ! मैंने जो तुम्हारा त्याग कर दिया है, इस अपराधको क्षमा करो। साध्वी स्त्रियाँ क्षमापरायण होती हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे उनमें क्रोध नहीं रहता। देवि ! मैं तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें जा रहा हूँ। तुम भी सुखपूर्वक यहाँसे जा सकती हो; क्योंकि निःस्पृह पुरुषोंके लिये एकमात्र मनोरथ यही है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी उपासनामें लग जायँ।'

जरत्कारुका यह वचन सुनकर देवी मनसा शोकसे आतुर हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने विनयभाव प्रदर्शित करते हुए अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे कहा—'प्रभो ! मैंने आपकी निद्रा भङ्ग कर दी—यह मेरा दोष नहीं कहा जा सकता, जिससे आप मेरा त्याग कर रहे हैं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि जहाँ मैं आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे दर्शन देनेकी कृपा कीजियेगा। पतिव्रता स्त्रियोंके लिये सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रेमका भाजन पति है। पति स्त्रियोंके लिये सम्यक् प्रकारसे प्रिय है, अतएव विद्वान् पुरुषोंने पतिको 'प्रिय'-की संज्ञा दी है। जिस प्रकार एक पुत्रवालोंका पुत्रमें, वैष्णवपुरुषोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे जनोंका जलमें, क्षुधातुरोंका अन्नमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका वाणिज्यमें निरन्तर मन लगा रहता है, प्रभो ! वैसे ही पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने स्वामीका किङ्कर बना रहता है। इस प्रकार कहकर मनसादेवी अपने स्वामीके चरणोंमें पड़ गयी।

मुनिवर जरत्कारु कृपाके समुद्र थे। उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर क्षणभरके लिये उसे अपनी गोदमें ले लिया। मुनिके नेत्रोंसे जलकी ऐसी धारा गिरी कि वह साध्वी मनसा नहा उठी तथा वियोग-भयसे कातर हुई मनसाने भी अपने आँसुओंसे मुनिके वक्षःस्थलको भिगो दिया। तत्पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हुए।

तदनन्तर मुनिवर जरत्कारु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलका बार-बार स्मरण करते हुए अपनी प्रिया मनसाको समझाकर तपस्या करनेके लिये चले गये। उधर देवी मनसा भी कैलासपर अपने गुरु भगवान् शंकरके निवास-गृहमें चली गयी। वह शोकसे व्याकुल थी। भगवती पार्वतीने उसे भलीभाँति समझाया। भगवान् शंकरने भी उसे मङ्गलमय ज्ञान देकर ढाढ़स बँधाया। वह शिवधाममें रहने लगी। वहाँ उत्तम दिनकी मङ्गलमयी वेलामें साध्वी मनसाने पुत्र उत्पन्न किया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों एवं ज्ञानियोंका भी गुरु था। जब वह गर्भमें था, तभी भगवान् शंकरके मुखसे उसे महाज्ञानकी उपलब्धि हो चुकी थी। अतएव वह बालक योगीन्द्र तथा योगियों और ज्ञानियोंका गुरु होनेका अधिकारी बना। भगवान् शंकरने उसका जातकर्म और नामकरण आदि माङ्गलिक संस्कार कराया। भगवान् शिवने उस शिशुके कल्याणार्थ उसे वेद पढ़ाये। बहुत-से मणि, रत्न और किरीट ब्राह्मणोंको दान किये। देवी पार्वतीद्वारा लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न ब्राह्मणोंको वितरण किये गये। भगवान् शिव स्वयं उस बालकको चारों वेद और वेदाङ्ग निरन्तर पढ़ाते रहे। साथ ही मृत्युञ्जयने श्रेष्ठ ज्ञानका भी उपदेश किया। मनसाकी अपने प्राणवल्लभ पतिमें, इष्टदेव श्रीहरिमें तथा गुरुदेव भगवान् शिवमें पूर्ण भक्ति थी। पिताके अस्त होनेपर उत्पन्न होनेसे उस पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ।

वहाँ (आये हुए) मुनिवर जरत्कारु उसी क्षण भगवान् शंकरसे आज्ञा लेकर भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। उन तपोधन मुनिने परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके दीर्घकालतक तप किया। फिर वे महायोगी मुनि भगवान् शंकरको प्रणाम करनेके

विचारसे कैलासपर आये। भगवान् शंकरको नमस्कार करके कुछ समयके लिये वहीं रुक गये। तबतक वह बालक भी वहीं था। उदार देवी मनसा उस बालकको लेकर अपने पिता कश्यपमुनिके आश्रममें चली आयी। उस समय पुत्रवती कन्याको देखकर प्रजापति कश्यपके मनमें अपार हर्ष हुआ। उस अवसरपर प्रजापतिने ब्राह्मणोंको प्रचुर रत्न-दान किये। शिशुके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया। कश्यपजीकी दिति-अदिति तथा अन्य जितनी पत्नियाँ थीं, उनके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वह कन्या मनसा पुत्रके साथ सुदीर्घकालतक उस आश्रमपर ठहरी रही।

अभिमन्युकुमार राजा परीक्षित्‌को ब्राह्मणका शाप लग गया। दुर्दैवकी प्रेरणासे उनसे ऐसा कर्म बन गया कि सहसा परीक्षित् शापसे ग्रस्त हो गये। शृङ्गी ऋषिने कौशिकीका जल हाथमें लेकर शाप दे दिया कि 'एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प तुम्हें काट खायगा।' तक्षकने सातवें दिन उन्हें डँस लिया। राजा सहसा शरीर त्यागकर परलोक चले गये। जनमेजयने अपने पिताका दाह-संस्कार कराया। इसके पश्चात् उन महाराज जनमेजयने सर्पसत्र आरम्भ किया। ब्रह्मतेजके कारण समूह-के-समूह सर्प प्राणोंसे हाथ धोने लगे। तक्षक भयसे घबराकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। तब ब्राह्मणमण्डली इन्द्र-सहित तक्षकको होम देनेके लिये उद्यत हो गयी। ऐसी स्थितिमें इन्द्रके साथ देवता भगवती मनसाके पास गये। उस समय इन्द्र भयसे अधीर हो उठे थे। उन्होंने भगवती मनसाकी स्तुति की। फलस्वरूप मुनिवर आस्तीक माताकी आज्ञासे राजा जनमेजयके यज्ञमें आये। उन्होंने जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। ब्राह्मणोंकी आज्ञा अथवा कृपावश राजाने वर दे दिया। यज्ञकी पूर्णाहुति कर दी गयी। सुप्रसन्न राजाद्वारा ब्राह्मण यज्ञान्त-दक्षिणा पा गये। तत्पश्चात् ब्राह्मण, देवता और मुनि सभी देवी मनसाके पास गये तथा सबने पृथक्-पृथक् उस देवीकी पूजा और स्तुति की। इन्द्रने श्रेष्ठ सामग्रियोंको लेकर उनके द्वारा देवी मनसाका पूजन किया। फिर वे भक्तिपूर्वक नित्य पूजा करने लगे। षोडशोपचारसे अतिशय आदर प्रकट करते हुए उन्होंने पूजा और स्तुति की। यों देवी मनसाकी अर्चना करनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके आज्ञानुसार संतुष्ट होकर सभी देवता अपने-अपने स्थानोंपर चले गये।

देवी मनसाकी पूजाका विधान तथा सामवेदोक्त ध्यान इस प्रकार है—'भगवती मनसा चम्पक पुष्पके समान वर्णवाली हैं। इनका विग्रह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित है। स्वर्णिम वस्त्र इनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इन्होंने सर्पोंका हार धारण कर रखा है। महान् ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें भी ये प्रमुख मानी जाती हैं। ये सिद्धपुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सिद्धि प्रदान करनेवाली तथा सिद्धा हैं, मैं इन भगवती मनसाकी उपासना करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा गन्ध, पुष्प और अनुलेपनसे देवीकी पूजा होती है। सभी उपचार मूलमन्त्रको पढ़कर अर्पण करने चाहिये। इनके मूलमन्त्रका नाम है—'मूल कल्पतरु'—यह सुसिद्ध मन्त्र है। इसमें बारह अक्षर हैं। इसका वर्णन वेदमें है। यह भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाला है। मन्त्र इस प्रकार है **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा।'** पाँच लाख मन्त्र जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जिसे इस मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त हो गयी, वह धरातलपर सिद्ध है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है। उस पुरुषकी धन्वन्तरिसे तुलना की जा सकती है।

जो पुरुष आषाढ़की संक्रान्तिके दिन 'गुडा' (कपास या सेहुड) नामक वृक्षकी शाखापर यत्नपूर्वक इन भगवती मनसाका आवाहन करके भक्तिभावके साथ पूजा करता है तथा मनसापञ्चमीको उन देवीकी अर्चना करता है, वह अवश्य ही धनवान्, पुत्रवान् और कीर्तिमान् होता है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

'भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—भक्तिके ये नौ भेद हैं। (श्रीमद्भा० ७।५।२३)

माताद्वारा अपने पुत्रोंको ज्ञानोपदेश

[मदालसा-आख्यान]

प्राचीन कालमें काश्य-वंशमें उत्पन्न शत्रुजित् नामके एक धर्मात्मा राजा थे। इनका एक पुत्र, जिसका नाम वत्स था, विशेष सत्यवादिताके कारण ऋतध्वज नामसे प्रसिद्ध हो गया। उसके गुणोंसे आकृष्ट होकर नागलोकके राजा अश्वतरके दो पुत्र ऋतध्वजके घनिष्ठ मित्र हो गये और प्रतिदिन उसके पास आकर समय-यापन करने लगे। एक दिन जब उनके पिताने प्रतिदिन भूलोक जानेका कारण पूछा तो पुत्रोंने कहा कि 'हम नित्य अपने मित्र अमितगुणशाली ऋतध्वजके पास मिलने जाते हैं।' इसपर प्रसन्न होकर नागराज अश्वतरने कहा कि 'तुम्हारे मित्र ऋतध्वजको या उनके माता-पिताको कोई क्लेश तो नहीं है?' तब उनके पुत्रोंने कहा—ऋतध्वजकी पत्नी मदालसाका देहान्त हो गया है, जिस कारण उनका सारा परिवार दुःखी है। यह कथा विस्तृत है, पर आप संक्षेपमें इस प्रकार समझें—

'एक थे महर्षि गालव, उन्हें पातालकेतु नामक दैत्य सदा कष्ट देता था। एक बार जब वे अत्यन्त उद्विग्न हो गये और उनके मुखसे सहसा आहकी ध्वनि निकल पड़ी, तब उसी समय आकाशसे एक दिव्य अश्व उतरा और आकाशवाणी हुई कि 'आप इस कुवलय नामक अश्वको ऋतध्वजको दे दें, इससे अब उसका नाम कुवलयाश्व हो जायगा और वह पातालकेतुको मार डालेगा।' गालव मुनिने घोड़ेके साथ शत्रुजित्के दरबारमें पहुँचकर आकाशवाणीकी बात कही और अपना क्लेश सुनाया। पिताकी आज्ञासे राजकुमार कुवलयाश्व गालव मुनिके साथ उनके आश्रमपर पहुँचे। मुनिने ज्यों ही एक यज्ञकी दीक्षा ली त्यों ही शूकर-वेषमें पातालकेतु दानव भी उसमें विघ्न डालनेके लिये आ पहुँचा। कुवलयाश्वने घोड़ेपर चढ़कर उसका पीछा किया। पातालकेतु तीव्र वेगसे भागता हुआ एक दुर्गम वनके विवर-मार्गसे पातालमें पहुँचकर छिप गया। दिव्य अश्वके सहारे उसी विवर-मार्गसे कुवलयाश्व भी पाताल पहुँचे; पर यहाँ उन्हें पातालकेतु नहीं दीख पड़ा, किंतु अमरावतीसे भी एक अधिक दिव्य नगरीमें सैकड़ों सोनेके महल दीखे। नगरमें प्रवेश करते ही मार्गमें उन्होंने कुण्डला नामकी एक दिव्य स्त्रीको देखा, जो उतावलीके साथ कहीं चली जा रही थी। कुवलयाश्वने उसका परिचय पूछा, पर वह कुछ न बोलकर एक दिव्य भवनकी सीढ़ियोंपर चढ़ती
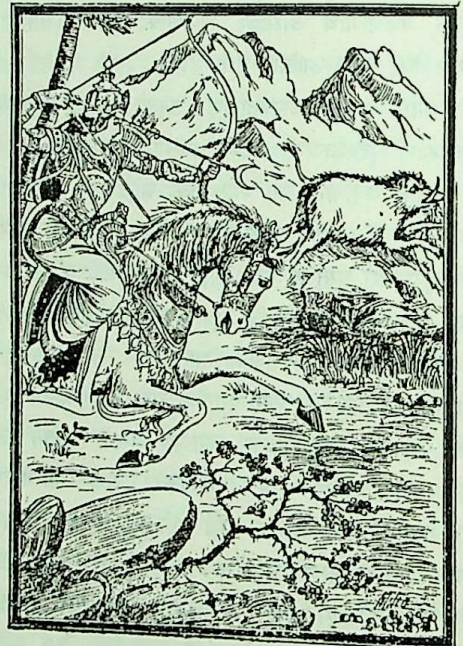
चली गयी। राजकुमारने भी निःशंकभावसे उसका अनुसरण करते हुए प्रासादके भीतर पहुँचकर सुवर्णमण्डित पर्यङ्कपर बैठी हुई एक अलौकिक रमणीरत्नको देखा। परस्पर दृष्टि पड़नेसे दोनों एक दूसरेके प्रति अत्यधिक आकृष्ट भी हो गये। कुण्डलाने राजकुमारको बताया कि 'गन्धर्वराज विश्वावसुकी पुत्री इस मदालसाका पातालकेतु दानवने गन्धर्वलोकसे अपहरण कर विवाहार्थ यहाँ छिपा रखा है और अभी वह किसीके बाणसे विद्ध होकर यहाँ पहुँचकर छिप गया है। जो उसे मारेगा वही मदालसा और भूलोक एवं पाताललोकका स्वामी होगा।' तदनन्तर राजकुमारका परिचय पूछा। राजकुमार कुवलयाश्वने अपने द्वारा गालव मुनिके रक्षा करने तथा उस कार्यमें विघ्न डालनेवाले पातालकेतुको बाणविद्ध कर पीछा करते हुए यहाँतक पहुँचनेकी बात बता दी। सुअवसर देखकर

कुण्डलाने दोनोंको विवाहके लिये सहमत कर अपने गुरु तुम्बुरुका स्मरण किया और वे तत्क्षण कुशा आदि लिये वहाँ उपस्थित हो गये तथा कुण्डलाके कथनानुसार उन्होंने शीघ्र ही अग्नि प्रज्वलित कर वैवाहिक विधि सम्पन्न करा दी, फिर तुम्बुरु और कुण्डला भी मदालसाकी अनुमतिसे अपने-अपने स्थानको चले गये। चलते समय कुण्डलाने कुवलयाश्व और मदालसाको पति-पत्नीके धर्मोंका सम्यक् ज्ञान करा दिया था। राजकुमार मदालसाको अपने अश्वपर बैठाकर जब पाताल-लोकसे बाहर निकलने लगा तब दानवोंमें सहसा कोलाहल मच गया और वे पातालकेतुसहित शूल-बाण, धनुष लिये कुवलयाश्वके सामने आ पहुँचे। राजकुमारने भी संनद्ध होकर बाणोंका जाल बिछाकर दानवोंके अस्त्र-शस्त्र काट डाले। क्षणभरमें पातालकी भूमि कुवलयाश्वके बाणोंसे आच्छादित हो गयी और दानवगण दग्ध होकर नष्ट होने लगे। पातालकेतु भी उनके साथ नष्ट हो गया, शेष दानव भाग गये।

कुवलयाश्व मदालसाके साथ भूलोकमें अपने पिताके पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर पातालकेतुके वधसे लेकर मदालसाकी प्राप्तितकके समस्त वृत्तान्तोंसे अवगत करा दिया। फिर राजकुमार और मदालसा सुखपूर्वक वन, उद्यान आदिमें आनन्दपूर्वक भ्रमण करते हुए राजप्रासादमें निवास करने लगे। दोनों ही गुरुजनोंकी सेवा और धार्मिकोंकी रक्षा करते हुए सभी प्रकारके सदाचारोंका पालन करते थे।

एक दिन कुवलयाश्व धर्म-रक्षाके विचारसे जब यमुनाके तटपर घूम रहे थे, तब उन्होंने पातालकेतुके छोटे भाई मायावी तालकेतुको देखा जो मुनिवेशमें अपने भ्रातृ-वैरके प्रतिशोधके प्रयत्नमें आश्रम बनाकर उन्हींके राज्यमें निवास कर रहा था। कुवलयाश्वने सरलभावसे उसे मुनि ही समझा। इसका लाभ उठाकर वह कुवलयाश्वके सामने आकर कहने लगा—'आपसे एक प्रार्थना है—मैं एक महान् यज्ञ करना चाहता हूँ, इसमें अनेक बड़ी इष्टियाँ संनिविष्ट हैं, परंतु मेरे पास कोई साधन नहीं है। अतः आप अपना कण्ठाभरण देकर यह धर्मकृत्य सम्पन्न करायें और जबतक यमुनाजलके भीतर इष्टियोंसे वरुणको प्रसन्न कर मैं नहीं लौटूँ तबतक मेरे आश्रमकी रक्षा करें।'

राजकुमारने 'तथास्तु' कहकर अपना कण्ठहार उसे दे दिया। इधर वह मायावी दैत्य तालकेतु जलाशयमें प्रविष्ट होकर पुनः थोड़ी दूर जाकर उससे बाहर निकलकर राजभवनमें पहुँचा और शत्रुजित् तथा सभासदोंसे कुवलयाश्वके कण्ठहारको दिखाकर कहने लगा—'बड़े दुःखकी बात है, आज मेरे आश्रमके समीप मुनियोंकी रक्षामें संलग्न कुवलयाश्वका एक मायावी दैत्यने शूलद्वारा वध कर डाला, मरनेके समय उसने मुझे अपना यह कण्ठहार दिया। वहाँ उपस्थित मुनियोंने उसका दाह-संस्कार भी कर दिया। आपलोग इस कण्ठहारको ले लें। यह कहकर वह वहाँसे चला गया। सभी लोग शोकमग्न हो गये और मदालसाके तो हारको देखते ही प्राण निकल गये।

छद्मवेशी तालकेतुने जलसे बाहर निकलकर कुवलयाश्वसे कहा—'मेरी इष्टि पूरी हो गयी और मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया, अब चाहें तो आप जा सकते हैं।' राजकुमार जब घोड़ेपर आरूढ़ होकर वापस दरबारमें पहुँचा और लोगोंकी स्थिति देखी तो चकित रह गया। जब उसे मदालसाके मर जानेकी सूचना मिली तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ। अब वह निर्जीव-सा होकर मदालसाके अतिरिक्त किसी भी अन्य स्त्रीसे विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा कर अहर्निश शोकाकुल जीवन व्यतीत कर रहा है।'

अपने पुत्रोंकी बात सुनकर नागराज अश्वतर एक क्षण तो कुछ चिन्तित हुए, किंतु दूसरे ही क्षण वे मुस्कराते हुए कहने लगे—तुम लोग दुःखी न होओ। मैं तपश्चर्याद्वारा मदालसाको पुनर्जीवित कर कुवलयाश्वको प्राप्त करा दूँगा और फिर उन्होंने हिमालयके प्लक्षप्रस्रवण-तीर्थमें जहाँसे सरस्वती नदी समुद्भूत होती हैं, पहुँचकर सरस्वतीको आराधनाद्वारा प्रसन्न कर संगीत-सिद्धि प्राप्त कर ली। तदनन्तर वे भगवान् शिवकी आराधनामें प्रवृत्त हो गये। तन्त्रीलय और सप्तस्वरयुक्त संगीत-कौशलसे आशुतोष भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेके लिये कहा। तब अश्वतरने मदालसाको अविलम्ब उसी सौन्दर्य एवं वयोऽवस्थासे संयुक्त अपनी पुत्रीके रूपमें प्रकट होनेका वर माँगा। भगवान् शंकरने कहा—जब तुम पितरोंका श्राद्ध-तर्पण कर मध्यम पिण्डका सादर भक्षण करोगे तो तुम्हारे फणोंके मध्यभागसे मदालसा उसी रूपमें उत्पन्न हो जायगी।

नागराज अश्वतरने वैसा ही किया और मदालसा प्रकट हो गयी। तब उन्होंने उसे अन्तःपुरमें स्त्रियोंके गुप्त संरक्षणमें

रखवा दिया और एक दिन अपने पुत्रोंसे राजा ऋतध्वजको पातालमें बुला लानेको कहा। पुत्रोंने प्रतिदिनकी भाँति भूलोकमें आकर राजकुमार कुवलयाश्वसे अपने पिताद्वारा, उन्हें देखनेकी उत्सुकताकी बात कही। कुवलयाश्व भी पिताजीकी 'जैसी आज्ञा' कहकर तुरंत तैयार हो गये और तीनों गोमतीकी मध्यधारासे प्रविष्ट होकर पाताल पहुँच गये।

नागलोककी शोभा देखकर कुवलयाश्व चकित हो गये। उन्होंने नागराजको प्रणाम किया। नागराजने आशीर्वाद देकर उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। भोजनके पश्चात् सब लोग एक साथ बैठकर प्रेमालाप करने लगे। नागराजने मदालसाके पुनः जीवित होनेकी सारी कथा उन्हें कह सुनायी। फिर तो उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी मदालसाको ग्रहण किया और उनके स्मरण करते ही उनका प्रिय अश्व भी वहाँ आ पहुँचा। नागराजको प्रणाम करके वे मदालसाके साथ अश्वपर आरूढ़ हुए और उनकी आज्ञा लेकर अपने नगरमें चले आये। वहाँ उन्होंने सभीको मदालसाके जीवित होनेकी कथा सुनायी, नगरमें महान् उत्सव मनाया गया।

कुछ कालके पश्चात् महाराज शत्रुजित् परलोकवासी हो गये। ऋतध्वज (कुवलयाश्व) राजा हुए और मदालसा महारानी। मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उसका नाम 'विक्रान्त' रखा। मदालसा वह नाम सुनकर हँसने लगी। इसके बाद समयानुसार क्रमशः दो पुत्र और हुए। उनके नाम 'सुबाहु' और 'शत्रुमर्दन' रखे गये। उन नामोंपर भी मदालसाको हँसी आयी। इन तीनों पुत्रोंको उसने लोरियाँ गानेके व्याजसे विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश दिया। बड़े होनेपर वे तीनों ममताशून्य और विरक्त हो गये। मदालसाके उपदेशका सारांश इस प्रकार है—

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥
न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु॥
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः॥

हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतोंका बना हुआ है। न यह तेरा है, न तू इसका है। फिर किसलिये रो रहा है? अथवा तू नहीं रोता है, यह शब्द तो राजकुमारके पास पहुँचकर अपने-आप ही प्रकट होता है। तेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें जो भाँति-भाँतिके गुण-अवगुणोंकी कल्पना होती है, वे भी पाञ्चभौतिक ही हैं। जैसे इस जगत्में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतोंके सहयोगसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थोंको देनेसे पुरुषके पाञ्चभौतिक शरीरकी ही पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आत्माकी न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्ते पिनद्धः॥
तातेति किंचित् तनयेति किंचिदम्बेति किंचिद् दयितेति किंचित्।
ममेति किंचिन्न ममेति किंचित् त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः॥
दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्वानविमूढचेताः॥

तू अपने उस चोले तथा इस देहरूपी चोलेके जीर्ण-शीर्ण होनेपर मोह न करना। शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यह देह

प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला मद आदिसे बँधा हुआ है। तू तो सर्वदा इससे मुक्त है। कोई जीव पिताके रूपमें प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसीको माता और किसीको प्यारी स्त्री कहते हैं; कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'मेरा नहीं है' इस भावसे पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूतसमुदायके ही नाना रूप हैं, ऐसा तुझे मानना चाहिये। यद्यपि सब भोग दुःखरूप हैं तथापि मूढचित्त मानव उन्हें दुःख दूर करनेवाला तथा सुखकी प्राप्ति करानेवाला समझता है; किंतु जो विद्वान् हैं, जिनका चित्त मोहसे आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोगजनित सुखोंको भी दुःख ही मानते हैं।

तत्पश्चात् रानी मदालसाके गर्भसे चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजा उसका नामकरण करने चले तो उनकी दृष्टि मदालसापर पड़ी। वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। राजाने कहा—'मैं जब नाम रखता हूँ तब तुम हँसती हो। अब इस पुत्रका नाम तुम्हीं रखो।' मदालसाने कहा—'जैसी आपकी आज्ञा। आपके चौथे पुत्रका नाम मैं अलर्क रखती हूँ।' 'अलर्क!' यह अद्भुत नाम सुनकर राजा ठठाकर हँस पड़े और बोले—'इसका क्या अर्थ है?' मदालसाने उत्तर दिया, 'सुनिये! नामसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। संसारका व्यवहार चलानेके लिये कोई-सा नाम कल्पना करके रख लिया जाता है। वह संज्ञामात्र है, उसका कोई अर्थ नहीं। आपने भी जो नाम रखे हैं, वे भी निरर्थक ही हैं, पहले 'विक्रान्त' इस नामके अर्थपर विचार कीजिये। क्रान्तिका अर्थ है गति। जो एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाता है, वही विक्रान्त है। आत्मा सर्वत्र व्यापक है, उसका कहीं आना-जाना नहीं होता, अतः यह नाम उसके लिये निरर्थक तो है ही, स्वरूपके विपरीत भी है। आपने दूसरे पुत्रका नाम 'सुबाहु' रखा है। जब आत्मा निराकार है, तो उसे बाहु कहाँसे आयी। जब बाहु ही नहीं है तो सुबाहु नाम रखना कितना असङ्गत है। तीसरे पुत्रका नाम 'शत्रुमर्दन' रखा गया है, उसकी भी कोई सार्थकता नहीं दिखायी देती। सब शरीरोंमें एक ही आत्मा रम रहा है, ऐसी दशामें कौन किसका शत्रु है और कौन किसका मर्दन करनेवाला। यदि व्यवहारका निर्वाहमात्र ही उसका प्रयोजन है तब तो अलर्क नामसे भी इस उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है।

राजा निरुत्तर हो गये। मदालसाने उसे भी ब्रह्मज्ञानका उपदेश सुनाना आरम्भ किया। तब राजाने रोककर कहा—'देवि! इसे भी ज्ञानका उपदेश देकर मेरी वंशपरम्पराका उच्छेद करनेपर क्यों तुली हो। इसे प्रवृत्तिमार्गमें

लगाओ और उसके अनुकूल ही उपदेश दो।' मदालसाने पतिकी आज्ञा मान ली और अलर्कको बचपनमें ही व्यवहारशास्त्रका पण्डित बना दिया। उसे राजनीतिका पूर्ण ज्ञान कराया। धर्म, अर्थ और काम तीनों शास्त्रोंमें वह प्रवीण बन गया। बड़े होनेपर माता-पिताने अलर्कको राजगद्दीपर बिठाया और स्वयं वनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। जाते समय मदालसाने अलर्कको एक अँगूठी दी और कहा—'जब तुमपर कोई संकट पड़े तो इस अँगूठीके छिद्रसे उपदेशपत्र निकालकर पढ़ना और इसके अनुसार कार्य करना।' अलर्कने गङ्गा-यमुनाके संगमपर अपनी अलर्कपुरी नामकी राजधानी बनायी, जो आजकल अरैलके नामसे प्रसिद्ध है। कुछ कालके पश्चात् अलर्कको भोगोंमें आसक्त देख उनके बड़े भाई सुबाहुने काशिराजकी सहायतासे उनपर आक्रमण किया। अलर्कने सङ्कट जानकर माताका उपदेश पढ़ा। उसमें लिखा था—

'सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः ।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम् ॥

'सङ्ग (आसक्ति) का सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये, किंतु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये, क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग ही उसकी ओषधि है। कामनाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये, परंतु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मोक्षकी इच्छा) के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामनाको मिटानेकी दवा है।'

इस उपदेशको अनेक बार पढ़कर राजाने सोचा—'हमारा कल्याण होगा मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् करनेपर और मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् होगी सत्सङ्गसे।' ऐसा विचार कर अलर्कने महात्मा दत्तात्रेयजीकी शरण ली और वहाँ ममतारहित विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश पाकर वे सदाके लिये कृतार्थ हो गये। इस प्रकार महासती मदालसाने अपने पुत्रोंका उद्धार करके स्वयं भी पतिके साथ परमात्मचिन्तनमें मन लगाया और थोड़े ही समयमें मोक्षस्वरूप परमपद प्राप्त कर लिया। मदालसा अब इस लोकमें नहीं है, किंतु उसका नाम सदाके लिये अमर हो गया। (मार्कण्डेयपुराण)

सत्कथा

(श्रीरघुनाथप्रसादजी 'साधक')

सत्कथा यह कह रही है।
'यतो धर्मस्ततो जय' की पुण्य धारा बह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

बह रही है 'प्रेम' की गंगा निरन्तर पुण्य थलमें।
जीव-मात्रोद्धारके हित पाप धोने विमल जलमें॥
वेगसे जिसके अहर्निशि
भित्ति अघकी ढह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

व्रत 'अहिंसा' का दिया कल्याणकारी लोकको है।
'बुद्ध-गाँधी' ने मिटाया मानवोंके शोकको है॥
शोक-संतप्ता पुनः क्यों
राष्ट्रमाता रह रही है?
सत्कथा यह कह रही है॥

'सत्य' जीवन-ध्येय पूरा, प्राण देकर कर दिखाया।
ध्येय-रक्षामें जिन्होंने हर्षयुत मरना सिखाया॥
उन्हींकी संतान अब क्यों
हा! असत्पथ गह रही है?
सत्कथा यह कह रही है॥

'शान्ति'का संदेश-वाहक, धर्मराज-समान भारत।
'पथ-प्रदर्शक' विश्वका बन कर रहा संत्राण आरत॥
युद्धकी ज्वाला चतुर्दिक
आज उसकी दह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

'त्याग'में ही भोगका आदर्श जिसने सार जाना।
भोग अतिथिका समादर, सिद्ध-साधन-मान, जाना॥
'शिबि-दधीची' की कथा
बन अमर बेली लह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

'भक्ति' का भंडार पूरा था कभी, अक्षय कहानी।
अम्बरीष, दधीचि, शिबि, नृग, हो गये 'बलि-कर्ण' दानी॥
रोम-रोम रमे रमापति,
अब न कुछ इच्छा रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

'ज्ञान' गाथाएँ, कथाएँ, वेद-शास्त्र, पुराण गाते।
धर्म, कर्म, तपादिकोंका, सार संत हमें बताते॥
स्वार्थ-डूबी जाति निश्चय
'यातना-यम' सह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

भाव 'समता'का न होगा जिस समयतक विश्व 'साधक'।
'राम-राज्य' न बन सकेगा, प्रश्न होगा पूर्ण बाधक॥
'साधना' मेरी यही निज
शुद्ध सम्मति कह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥
'यतो धर्मस्ततो जय' की पुण्य (दिव्य) धारा बह रही है।
सत्कथा यह कह रही है॥

धर्मराजका धर्मोपदेश

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ।।
अहममरगणार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुविमुखान् प्रशास्मि मर्त्यान् हरिचरणप्रणतान्नमस्करोमि ।।
सुगतिमभिलषामि वासुदेवादहमपि भागवते स्थितान्तरात्मा ।
मधुवधवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि कृष्णः ।।
भगवति विमुखस्य नास्ति सिद्धिर्विषममृतं भवतीति नेदमस्ति ।
वर्षशतमपीह पच्यमानं व्रजति न काञ्चनतामयः कदाचित् ।।
नहि शशिकलुषच्छविः कदाचिद्विरमति नो रवितामुपैति चन्द्रः ।
भगवति च हरावनन्यचेता भृशं मलिनोऽपि विराजते मनुष्यः ।।
महदपि सुविचार्य लोकतत्त्वं भगवदुपास्तिमृते न सिद्धिरस्ति ।
सुरगुरुसुदृढप्रसाददौ तौ हरिचरणौ स्मरतापवर्गहेतोः ।।
शुभमिदमुपलभ्य मानुषत्वं सुकृतशतेन वृथेन्द्रियार्थहेतोः ।
रमयति कुरुते न मोक्षमार्गं दहयति चन्दनमाशु भस्महेतोः ।।
मुकुलितकरकुड्मलैः सुरेन्द्रैः सततनमस्कृतपादपङ्कजो यः ।
अविहतगतये सनातनाय जगति जनिं हरते नमोऽग्रजाय ।।

(नरसिंहपुराण, अ० ९)

धर्मराज अपने किंकरको हाथमें पाश लिये कहीं जानेको उद्यत देखकर उसके कानमें कहते हैं—'दूत ! तुम भगवान् मधुसूदनकी शरणमें गये हुए प्राणियोंको छोड़ देना; क्योंकि मेरी प्रभुता दूसरे मनुष्योंपर ही चलती है, वैष्णवोंपर मेरा प्रभुत्व नहीं है। देवपूजित ब्रह्माजीने मुझे 'यम' कहकर लोगोंके पुण्य-पापका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। जो विष्णु और गुरुसे विमुख हैं, मैं उन्हीं मनुष्योंका शासन करता हूँ। जो श्रीहरिके चरणोंमें सिर झुकानेवाले हैं, उन्हें तो मैं स्वयं ही प्रणाम करता हूँ। भगवद्भक्तोंके चिन्तन एवं स्मरणमें अपना मन लगाकर मैं भी भगवान् वासुदेवसे अपनी सुगति चाहता हूँ। मैं मधुसूदनके वशमें हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं। जो भगवान्से विमुख है, उसे कभी सिद्धि (मुक्ति) नहीं प्राप्त हो सकती; विष अमृत हो जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है; लोहा सैकड़ों वर्षोंतक आगमें तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता; चन्द्रमाकी कलङ्कित कान्ति कभी निष्कलङ्क नहीं हो सकती; वह कभी सूर्यके समान प्रकाशमान नहीं हो सकता; परंतु जो अनन्यचित्त होकर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा है, वह मनुष्य अपने शरीरसे अत्यन्त मलिन होनेपर भी बड़ी शोभा पाता है। महान् लोकतत्त्वका अच्छी तरह विचार करनेपर भी यही निश्चित होता है कि भगवान्की उपासनाके बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती; इसलिये देवगुरु बृहस्पतिके ऊपर सुदृढ़ अनुकम्पा करनेवाले भगवच्चरणोंका तुमलोग मोक्षके लिये स्मरण करते रहो। जो लोग सैकड़ों पुण्योंके फलस्वरूप इस सुन्दर मनुष्य-शरीरको पाकर भी व्यर्थ विषयसुखोंमें रमण करते हैं, मोक्षपथका अनुसरण नहीं करते, वे मानो राखके लिये जल्दी-जल्दी चन्दनकी लकड़ी फूँक रहे हैं। बड़े-बड़े देवेश्वर हाथ जोड़कर मुकुलित कर-पङ्कज-कोषद्वारा जिन भगवान्के चरणारविन्दोंको प्रणाम करते हैं तथा जिनकी गति कभी और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती, उन भव-भयनाशक एवं सबके अग्रज सनातन पुरुष भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

पंजीकृत-संख्या जी०आर०—१३

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गके आयोजनकी व्यवस्था है। वहाँ *परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज* वैशाख वदीके प्रथम सप्ताहमें किसी भी तिथिको पहुँच सकते हैं। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

अतः नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गी भाई लोग तथा माताएँ-बहनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे गीताभवन पधारें, आमोद-प्रमोद (मनोरञ्जन) अथवा जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सभीको केवल सत्सङ्ग-लाभके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये एवं यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्ग, कथा-श्रवण तथा कीर्तन आदिके आयोजनोंमें अनिवार्यरूपसे सम्मिलित होना चाहिये।

जिन्हें नौकर, रसोइयाकी आवश्यकता हो, उन्हें यथासम्भव उनको अपने साथमें ही ले जाना चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर, रसोइयोंका मिलना कठिन है। माताएँ और बहनें पीहर या ससुरालवालोंके (अथवा अन्य किसी निकटके सम्बन्धीके) साथ ही वहाँ जायँ। अकेली कदापि न जायँ। अकेली जानेकी दशामें उन्हें स्थान मिलनेमें कठिनाई हो सकती है। गहने आदि जोखिमकी वस्तुएँ साथमें बिलकुल नहीं ले जानी चाहिये। सत्सङ्गी भाइयोंको बहुत आवश्यक सामान ही अपने साथमें ले जाना चाहिये तथा अपने सामानकी पूरी सँभाल भी स्वयं ही रखनी चाहिये। जहाँतक बन पड़े, छोटे बच्चोंको साथमें न ले जायँ। खान-पानकी वस्तुओंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, परंतु दूधके प्रबन्धमें बहुत कठिनाई है।

—व्यवस्थापक

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,

३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
जगदीशप्रसाद जालान,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं।

श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता, (सन् १८६०के विधान २१ के अनुसार) रजिस्टर्ड-धार्मिक संस्था।

मैं जगदीशप्रसाद जालान गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

सौर वैशाख, वि० सं० २०४६

जगदीशप्रसाद जालान
(गोविन्द-भवन-कार्यालयके लिये)
प्रकाशक